कृष्णचन्द्र एम. ए.

गरजन की एक शाम

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली.

दो शब्द

प्रसिद्ध अमरीकी कवि वाल्ट ह्विटमैन् (Walt Whitman) ने एक बार कहा था—"कवि को प्रेरणा प्राप्त करने के लिये दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। उसे तो घास की एक पत्ती भी प्रेरणा दे सकती है।" कवि के सम्बन्ध में वाल्ट ह्विटमैन् का कथन कहानीकार कृष्णचन्द्र पर पूरी तरह घटता है। उनकी कहानियां पढ़िये—उनकी कहानियों के मूल-प्रेरक जहां जीवन की गम्भीर घटनाएँ, गहरी अनुभूतियां और विकट मानसिक संघर्ष हैं, वहां साधारण से साधारण और हेय से हेय वस्तुओं ने भी उनके कल्पना-सागर में लहरें पैदा की हैं। यह बात प्रत्येक कहानीकार अथवा कवि के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। यह विशेषता केवल उसी कलाकार की हो सकती है जो अत्यन्त भावुक हो, जिसकी कल्पना-शक्ति बहुत जाग्रत हो और जिसकी दृष्टि ऐक्सरेज (Xrays) की भांति वस्तुओं और घटनाओं के अन्तस्तल तक पहुँच सके। कृष्णचन्द्र एक ऐसे ही कलाकार हैं।

इस संग्रह से कृष्णचन्द्र की कला की बहुरूपता पूर्णतया प्रकट होती है। इस संग्रह में "पिटारे" है जो सामन्ती समाज के नैतिक पतन और उनके द्वारा जनता पर किये गये घोर अत्याचारों का एक मार्मिक प्रतिबिम्ब है। इसमें "सफेद फूल" भी है जो एक ऐसे भाग्यहीन पुरुष की कहानी है जिसे प्रकृति ने वाणी से और समाज ने सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा और जिसने अपने मूक प्रेम के लिये अपने प्राणों की आहुति दी। इनके अतिरिक्त इनमें वे कहानियां भी हैं जिनको "पहाड़ों की कहानियां" कहना उचित होगा—उन पहाड़ों की कहानियां जिनमें कृष्णचन्द्र का बाल्यकाल बीता और जिनमें कृष्णचन्द्र की कला अपने पूर्ण यौवन को प्राप्त हुई।

इन सब कहानियों में, उनकी अन्य अनेक कहानियों की भांति, कुछ बातें विशेषरूप से अनुशीलन के योग्य हैं। कृष्णचन्द्र की प्रत्येक

उन दोनों में कैसी प्यार भरी लड़ाइयां होती हैं, सुहाग की रात गुलदुम को चूम कर कैसे नूरनशां अपने प्रियतम को अपना चुम्बन पहुंचाती है और किस प्रकार गुलदुम की मृत्यु उन दोनों के स्वप्नमय संसार के विनाश की द्योतक सिद्ध होती है। "सफेद फूल" में काग़ज़ी चमड़े के चप्पल पर चांदी के तारों से बने हुए दो कमल के सुन्दर सफेद फूल एक गूंगे चमार युवक की कारीगरी का नमूना-मात्र नहीं हैं, उन कमल के फूलों में उस अभागे युवक के मन का वह कमल खिला हुआ है, जो यथार्थ जीवन में कभी न खिल सका। "बचपन" में हरे मनकों की माला पत्थर के टुकड़ों का तुच्छ हार नहीं है, उसमें प्रेम की अमूल्य स्मृतियों के पवित्र मोती पिरोए हुए हैं। "एक चित्र" में बिल्ली के बच्चे केवल-मात्र बिल्ली के बच्चे नहीं हैं, वरन् सृजन के वे अंकुर हैं जिनको नारी की आत्मा में बैठी हुई मातृत्व की भावना सदैव से सींचती आई है और सदैव सींचती रहेगी।

इन संकेतों के द्वारा कृष्णचन्द्र वे बातें कह जाते हैं जिन के कहने के लिये मनुष्य आज तक उपयुक्त शब्द नहीं खोज सका है। इन संकेतों की ओट में नवयुवक और नवयुवतियां अपनी उन अव्यक्त भावनाओं को व्यक्त कर जाते हैं जिनको शब्दों में ढालना मानो उन भावों का अनादर करना है। इसका एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण "गुलदुम" का वह दृश्य है जहां रात के समय अज़ीज़ और नूरनशां मिलते हैं और उनकी दृष्टि हिरनों के जोड़े पर पड़ती है। अज़ीज़ और नूरनशां ने उन्हें देखा और नूरनशां ने एक मीठी आह भर कर कहा— "हिरनों का जोड़ा था।"

इस संग्रह की कुछ कहानियों से पता लगता है कि कृष्णचन्द्र का बाल्यकाल उनके स्मृतिपट पर अभी तक बड़े स्पष्ट रूप में अंकित है। "आता है याद मुझ को" और "बचपन" कहानियां बाल्यकाल की स्मृतियों के ताने-बाने से बुनी हुई हैं। ये कहानियां एक प्रकार से कलात्मक प्रयोग हैं। कहानियों में बचपन की घटनाओं को नितान्त

सरल, स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है। बचपन में जो छोटी-छोटी बातें बालक के लिये महत्त्वपूर्ण घटनाओं का रूप धारण कर लेती हैं, और ईर्ष्या घृणा और क्रोध के भाव जिन बातों से उस में जाग्रत होते हैं, उन सब का इन दो कहानियों में वर्णन किया गया है। परन्तु बचपन की घटनाओं को ज्यों का त्यों लिख देने से कहानियां नहीं बन गई हैं। उनमें अर्थ पैदा करने के लिये बड़े सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से काम लिया गया है और मानव व्यक्तित्व के विकास की प्रथम कड़ियों को दूसरी कड़ियों से इस प्रकार मिलाया गया है कि प्रौढ़ पाठक के लिये ये कहानियां बच्चों की कहानियाँ न रह कर बचपन का एक धार्मिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन बन गई हैं।

इस संग्रह में कुछ ऐसी कहानियाँ भी हैं जिन्हें कदाचित् लेखक ने बड़े प्यार से लिखा है। "गरजन की एक शाम" और "आंगी" ये दोनों कहानियां पहाड़ी युवतियों के शुद्ध प्रेम की मार्मिक गाथाएँ हैं। "गरजन की एक शाम" की "जीशी" और "आंगी" की "आंगी" इतनी भोली-भाली, सुन्दर, पवित्र, सरल और स्नेहमयी हैं कि उनका अस्तित्व कल्पित होने का आभास होता है। लगता है जैसे कहानीकार ने अपनी कल्पना की समस्त कोमलता बटोरकर इन दो युवतियों का सृजन किया है। कृष्णचन्द्र की और कई कहानियों में ऐसे ही नारी-पात्र हैं और जिस स्नेह और स्निग्धता से कृष्णचण्द्र ने उनका वर्णन किया है उससे पता चलता है कि कृष्णचन्द्र नारी को सौन्दर्य और पवित्रता की प्रतिमा देखना चाहते हैं, परन्तु वे यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि इस मशीनी और कृत्रिमतापूर्ण युग में यह नारी नहीं पनप सकती। 'जीशी' और 'आंगी' का अस्तित्व वास्तविक जगत में हो या न हो, परन्तु उनका पवित्र सौन्दर्य और उनकी आँखों के पवित्र आंसू कृष्णचन्द्र के साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

—रेवती सरन शर्मा

विषय-सूची

: १ :

पिंडारे

जमना सागरा में रहती थी। सागरा ब्राह्मणों का गांव था और सहस्रों वर्षों से चला आ रहा था। काश्मीर की सहस्रों छोटी-छोटी पर्वत मालाओं में यह भी एक छोटे से पर्वत में स्थित था। सागरा के लिए केवल दो दिशाएँ स्थित थीं, उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व। दोनों दिशाओं में ऊँचे ऊँचे पर्वत खड़े थे, जो एक संकीर्ण अण्डाकार गोला बनाते हुए फिर आपस में मिल गए थे। प्रतिदिन सूर्य एक पहाड़ से उदय होता और दूसरे पहाड़ में अस्त हो जाता। पहाड़ के ऊपर उस संकीर्ण अण्डाकार आकाश में सूर्य का मार्ग एक छोटी-सी आड़ी रेखा थी और यह रेखा सदा बदलती रहती थी। सागरा के ब्राह्मण इसी आड़ी रेखा को देखकर ऋतु-परिवर्तन का अनुमान लगाया करते थे। ग्रीष्म-काल में इस आड़ी रेखा का अगला सिरा ठीक पहाड़ी नाले के मुख पर चला जाता था और दूसरा उस बिन्दु पर जहां पहाड़ी नाला दोनों पर्वतों की संकीर्ण सीमाओं को चीरकर लुप्त होता दिखाई देता था। उन दिनों मक्के की फ़सल बोई जाती थी और मक्के के खेतों के किनारे-किनारे कुंकुम का साग और मिरचों के पौधे। नाले के किनारे वाले खेतों में सदा पानी खड़ा रहता था और इस कारण वहां धान बोया जाता था। कभी-कभी नाले में वर्षा का पानी बहुत ज़ोरों से उमड़ आता थो[illegible] का एक-आध खेत बह जाता था। परन्तु शरद्‌काल में नाला [illegible] जब दक्षिण-पश्चिमी पहाड़ों के पांवों से जा लगता था, उस समय

के ब्राह्मण नाले से अपना बहा हुआ खेत लौटा लेते थे। वे अगले वर्ष के धान के खेत के लिये एक-आध क्यारी अधिक ही बना लेते थे।

सागरा में दिन छोटे और रातें बड़ी होती थीं। प्रखर प्रकाश और उजली धूप के दर्शन वहाँ कम होते थे। दिन के समय बहुधा एक धुंधली-सी सफेदी छाई रहती और रात्रि में गहरा अँधेरा होता, जिसमें कहीं-कहीं तारे चिंगारियों की भांति जलते दिखाई पड़ते। शरद्काल तो बहुधा एक लम्बी रात्रि होता, जिसमें बादल घिरे रहते, तीव्र ठण्डी हवाएँ चलतीं और कभी-कभी बिजली कौंध जाती। सागरा में दो ही दिशाएं थीं और दो ही ऋतुएं—ग्रीष्मऋतु और शरद्ऋतु। या यूं कहिये कि एक संक्षिप्त-सा वसन्त और एक लम्बा-सा पतझड़।

और फसलें भी दो ही होती थीं—मकई और धान। लम्बे पतझड़ में तो सागरा के अधिकांश ब्राह्मण परदेश में नौकरी की खोज में निकल जाते, जहाँ वे रसोइये रख लिये जाते। या सुदूर की मण्डियों से नमक लाने चल देते या घर पर सूत कातकर कपड़ा बुनते। उनकी स्त्रियाँ चरखों पर घों घों के साथ गीत गाकर अट्टियाँ बनातीं और पुरुष लिपे-पुते आँगन में लकड़ी की कीलें गाड़कर सूत के ताने-बाने से ऊनी चादरें, लोइयां, मोटा खद्दर और अपनी युवा स्त्रियों और बहनों के लिए ऊन और सूत को मिलाकर सुन्दर कपड़ा बुनते, जिन पर लाल धागों से स्त्रियां भद्दे और मोटे फूल काढ़ लेतीं।

सागरा में अधिक से अधिक एक सौ घर होंगे। उन एक सौ परिवारों का नेतृत्व गाँव का सबसे वृद्ध ब्राह्मण करता था। वह गाँव का नम्बरदार भी था और धर्म-गुरु भी—वह गाँव से दूर बड़ी सरकार के सामने गाँववालों के अच्छे-बुरे कर्मों का उत्तरदायी था और उनका स्थायी प्रतिनिधि। उस गाँव में सहस्रों वर्षों से ब्राह्मण धर्म-गुरुओं का राज्य चला आता था। उस गाँव से बाहर न जाने कितनों का राज्य स्थापित हुआ और छिन गया—आर्य, मङ्गोल, तिब्बती, नेपाली, चीनी, मुग़ल, सिख और अब डोगरा राज्य स्थापित था—परन्तु इन राज-

नैतिक परिवर्तनों ने सागरा निवासियों को न कोई लाभ पहुंचाया और न कोई हानि। सहस्रों वर्षों से अपनी फ़सल का एक तिहाई या चौथाई भाग कर के रूप में देते आ रहे थे। चौकीदारी और जङ्गल का कर और पटवारी व रास्ते के सब व्यय का भार उन पर ही था—कभी-कभी मालिक बेगार भी ले लेता था, क्योंकि जो मालिक है वह बेगार अवश्य लेगा।

यदि सागरा-निवासियों को रोटी-कपड़े की तंगी आ जाती तो भगवान् की कृपा से वे परदेश जाकर नौकरी-चाकरी कर सकते थे, भोजन बना सकते थे और यदि उनमें से कोई भोजन बनाना न जानता तो झूठे बरतन साफ कर सकता था। अपने भाग्य पर न वे सन्तुष्ट थे और न असन्तुष्ट—हज़ारों वर्षों से वे एक ही डगर पर चले आ रहे थे और उन्हें इस बात का तनिक भी ज्ञान न हुआ था कि उनका भाग्य अच्छा है अथवा बुरा—क्योंकि उन्होंने, उनके पूर्वजों ने और उनके पूर्वजों के पूर्वजों ने कभी कोई दूसरा भाग्य देखा ही न था।

इस गांव में जमना रहती थी। जमना का पति खेती-बाड़ी भी करता था और दूकान का काम भी—सारे गांव में केवल वही एक दूकान थी और सागरा के छोटे से पहाड़ में नदी के दक्षिण-पश्चिमी ओर पर स्थित थी, जहां से एक पगडण्डी बाहर से आती हुई, सागरा के गांव के समीप से नाले के साथ साथ होती हुई ऊपर उत्तर-पूर्वी पर्वत-शिलाओं में चली गई थी। इस पगडण्डी द्वारा ही सागरा का सम्बन्ध बाह्य संसार से होता था—और इसी पगडण्डी पर जमना के स्वर्गीय पति की दूकान थी। एक दिन पहाड़ी नाले को पार करने के प्रयत्न में वह बह गया था और नाले के प्रवाह ने उसकी खोपड़ी को बड़ी-बड़ी चट्टानों के नुकीले किनारों से, जो पानी में छिपे हुए थे, टकराकर टुकड़े टुकड़े कर दिया था, उसकी टांगों की हड्डियों को तोड़ दिया था, उसकी अंगुलियों को ओखली में साफ़ किये हुये धान की भांति [illegible] दिया था। यह परमेश्वर की इच्छा थी कि उसकी मृत्यु इसी प्र[illegible]

यह उसके पूर्व-जन्म के कर्मों का फल था, या उसकी जवान विधवा के नक्षत्रों का अथवा उस नन्हें से शिशु के ग्रहचक्र का जिसकी आयु अब एक वर्ष की थी। जमना अपने पति की मृत्यु पर सती न हुई—वह रोई-चिल्लाई भी अधिक नहीं थी। पति की मृत्यु से अधिक उसे अपने विधवा हो जाने का शोक था। वह अब कढ़े हुए फूलदार वस्त्र न पहन सकेगी। उसे चाँदी की वालियाँ, कानों के दो जोड़ और कलाइयों के कड़े भी उतारने होंगे। उसकी नस-नस में यौवन की मादकता संचार कर रही थी, परन्तु सहसा उसे लगा मानो किसी ने उसका अकस्मात् गला दवा दिया हो और वह भीतर ही भीतर घुटकर रह गई हो। यह सोचकर कि अब कोई उसके कोमल व मांसल शरीर को अपनी छाती से न लगा सकेगा, उसके पतले-पतले गुलावी ओठों और लम्वी कजराई पलकों को न चूम सकेगा, वह आतुर हो उठी—उसे अपने पति पर वहुत क्रोध आया और उसने शिवजी के प्राचीन मन्दिर में देवता के चरणों में गिरकर विनीत स्वर में वार-वार पूछा कि उसके साथ ऐसा अन्याय क्यों हुआ? परन्तु पवित्र देवता ने उसके प्रश्न का कोई उत्तर न दिया अथवा शायद वह पवित्र देवता का उत्तर समझने में असमर्थ रही थी। कुछ भी हो उस समय भगवान् के उत्तर से उसे कोई सान्त्वना न मिली थी। वाद में वूढ़े ब्राह्मण के समझाने पर जमना का क्रोध शान्त हो गया—शनैः-शनैः केवल जीवित रहने का स्वाभाविक मोह शेष भावनाओं पर विजयी हो गया और उसने अपने पति की दूकान सम्भाल ली, और खेती-वाड़ी का काम एक अन्य ब्राह्मण को सौंप दिया। गाँव के नम्वरदार और अन्य वूढ़े पंचों ने जमना को वहुत समझाया कि दूकान भी वह किसी अन्य व्यक्ति को सौंप दे और स्वयं शिवजी के मन्दिर में वैठकर शेष जीवन उपासना में व्यतीत करे। उन्होंने कहा वे स्वयं उसके पुत्र का संरक्षण एवं पालन-पोषण करेंगे। वैसे भी एक ब्राह्मण युवती का दूकान पर वैठना अनुचित होता है—और विशेषतया उस अवस्था में जबकि वह युवती

नवविधवा और जमना जैसी रूप और लावण्य की मूर्ति हो। परन्तु जमना ने उनकी एक न मानी। उसने दूकान की व्यवस्था अति सुन्दर ढङ्ग से की। वह यात्रियों से बहुत मीठा बोलती और ग्राहकों को मुस्करा-मुस्कराकर सौदा देती थी। उसके पति की मृत्यु को एक वर्ष बीत गया था। परन्तु अब उसका जीवन एक हिन्दू विधवा के जीवन की भांति कष्टपूर्ण और नीरस न था। निस्सन्देह गांव के बहुत से वृद्ध लोगों को यह अवस्था अच्छी न लगती थी, परन्तु जमना को इस बात की तनिक भी परवाह न थी। उसका लड़का अब दो वर्ष का हो गया था और वही उसके जीवन का केन्द्र था। प्रातःकाल और सायं-काल वह मन्दिर में पूजा करने जाती और देवता से अपने एकमात्र पुत्र के जीवन और स्वास्थ्य की शुभ कामनायें करती। अब उसके मन को स्थिरता प्राप्त हो गई थी। उखड़े हुए पांव जम गए थे। केवल उसके अन्तर में एक हल्की-सी चुभन और मन्द-मन्द सी कसक रह-रहकर जाग उठती थी। जब कभी यात्री उसे प्यासी प्यासी दृष्टियों से देखते तो उस समय उसके कपोल अरुणिम हो जाते, श्वास का प्रवाह तीव्र हो उठता, और वह अपने समस्त शरीर में एक सनसनाहट-सी अनुभव करती। यही सनसनाहट उसे शरद् की अँधेरी रातों में बहुधा सताती थी। जब उसे अपने पति का प्यार याद आता तो वह एक दीर्घ निःश्वास भरकर अपने सोये हुए बच्चे के नन्हें-नन्हें हाथ अपने वक्षस्थल पर फैला लेती और उसका मुख ज़ोर-ज़ोर से चूमने लगती—यहां तक कि बच्चा जाग उठता और रोने लगता। ऐसे क्षण बहुत कष्टदायक होते; परन्तु जमना को पूर्ण विश्वास था कि बहुत थोड़े समय में ही वह उन पर विजय प्राप्त कर लेगी और यह सम्भव था कि समय बीतने पर जैसे-जैसे यौवन का मद मद्धम पड़ता जाता, अतृप्त वासना की यह तीव्र कसक भी सदैव के लिए दब जाती। परन्तु इन्हीं दिनों में इलाके के तहसीलदार साहिब ने अपने दौरे के [illegible] जमना का गांव चुना।

सागरा में तहसीलदार का दौरे पर आना गाँव के निवासियों के लिये आश्चर्य की बात थी, क्योंकि इस सुदूर स्थान में अफ़सर लोग बहुत कम आते थे। बहुधा वर्षों बीत जाते थे और गाँव-निवासियों को अपने अफ़सरों के दर्शन दुर्लभ हो जाते थे। वैसे भी उन्हें अपने मालिकों से कोई विशेष प्रेम न था और वे इसी बात को अच्छा समझते थे कि उन्हें अलग-अलग रहने दिया जाय। यह उनका सौभाग्य था कि सागरा एक ऐसी संकीर्ण घाटी में स्थित था जहाँ किसी अफ़सर का मन आने को न करता था। ऊँचे-नीचे पहाड़, उनकी तलहटी में देवदारु के घने वन, देवदारु के नीचे चीढ़ और दियार और उनके नीचे दो-चार खेत, चरागाहें, गाँव, धान के खेत और सबसे नीचे चोर की भांति घाटी से निकलता हुआ वह नाला। ब्राह्मणों के इस गाँव में मारकाट व हत्या-काण्ड कहाँ? इसी कारण वर्षों से यहाँ किसी ने पुलिस के सिपाही का मुख भी न देखा था। जलवायु के दृष्टिकोण से भी यह स्थान निराशाजनक ही था। भूमि-सम्बन्धी झगड़े यहाँ के पञ्च आपस ही में चुका लेते थे। यहाँ अफ़सरों के लिये किसी प्रकार का कोई भी आकर्षण नहीं था। इस कारण तहसीलदार साहब का दौरे पर आना उन लोगों के लिए वास्तव में आश्चर्य की बात थी।

तहसीलदार गठीले शरीर का हृष्ट-पुष्ट सुन्दर नवयुवक था—चौड़ी छाती, बलिष्ठ ठोड़ी और छोटी-छोटी सुन्दर मूँछें। जब जमना ने उसे अपनी दूकान के आगे से घोड़े पर सवार जाते देखा तो वह चकित रह गई। सागरा के ब्राह्मण तो उसके सामने मरियल टट्टू से प्रतीत होते थे। तहसीलदार ने एक खाकी रंग की बिजिस पहन रखी थी और सिर पर खाकी टोपी थी और हाथ में बेंत की छड़ी, जिसके एक सिरे पर चमड़े का फुन्दना लगा हुआ था। उसकी प्रत्येक छवि निराली थी और जब उसने दृष्टि घुमाकर जमना की ओर देखा तो जमना के शरीर का रोम-रोम कम्पायमान हो उठा था। उस समय वह एक यात्री।

मिश्री तोलकर दे रही और तराजू कुछ क्षणों के लिये उसके हाथ में लटकता रह गया था।

तहसीलदार साहब ने दिनभर चीड़ के पेड़ों के एक छोटे-से झुंड के नीचे अपना दरबार लगाया। वह स्वयं एक बेंत की कुरसी पर बैठे और गिरदावर, कानूनगो और मुन्शी-मुसद्दी उनके पैरों में पृथ्वी पर। इस प्रकार हाकिमों के दरबार में सागरा की प्रजा की पेशी हुई। बेचारे ब्राह्मण भय के मारे मरे जा रहे थे। जिस प्रकार हर मनुष्य परमात्मा से भयभीत रहता है और उसकी उचित-अनुचित आराधना एवं चापलूसी में तल्लीन रहता है, उसी प्रकार वे तहसीलदार के आगे हाथ बांधे खड़े थे और मुन्शी-मुसद्दियों की खुशामद कर रहे थे।

मुन्शी अब्दुर्रहमान ने अपनी मौलवियाना दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, "अबे हरामजादो, वे घास के गट्ठे अभी तक नहीं पहुंचे ?" राजाराम ब्राह्मण हाथ जोड़कर बोला, "हुजूर, मैं स्वयं अभी घास के चार गट्ठे बांधकर लाया हूं।

मुन्शी अब्दुर्रहमान ने गरजकर कहा, "हुजूर के बच्चे ! चार गट्ठों से क्या होता है ?" और फिर तहसीलदार की ओर मुड़कर बोला—"हुजूर ! वर्षों से किसी अफ़सर ने इस प्रान्त का दौरा नहीं किया—अब देखिये इसका परिणाम—हुजूर के तशरीफ़ लाने पर घास के केवल चार गट्ठे पेश किये जाते हैं और मुर्गा एक भी नहीं। यहां के लोग कितने स्वेच्छाचारी हो गये हैं !"

नम्बरदार ने डरते-डरते निवेदन किया, "हुजूर, मुन्शी साहब, यह ब्राह्मणों का गांव है। हम न मुर्गियां पालते हैं न खाते हैं। और कोई दूसरा गांव भी समीप नहीं......।"

घसीटा राम पेशकार ने चिल्लाकर कहा, "यह कुत्ता ब्राह्मण क्या बख्यान करता है ? बांध दो इसे पेड़ से और लगाओ कोड़े, ताकि इसे अधिकारियों से बात करने का शिष्टाचार आ जाय।"

बूढ़ा ब्राह्मण थर-थर कांपने लगा। तहसीलदार साहब अपनी छोटी-छोटी सुन्दर मूछों को ताव देते हुए हँसने लगे और बोले, "नहीं-नहीं, यह वेचारा सच कहता है। अच्छा, तुम यहाँ के नम्वरदार हो न ?"

"जी !"

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"सत्यनारायण, हुजूर।"

तहसीलदार साहब पुनः मुस्कराये। "तुम बहुत भले पुरुष प्रतीत होते हो सत्यनारायण ! अच्छा अब यह बताओ कि आज रात्रि हमारा कैम्प कहाँ लगेगा ?"

नम्वरदार ने तुरन्त उत्तर दिया, "जो स्थान हुजूर को अच्छा लगे।"

तहसीलदार कुछ क्षण सोचते रहे और फिर बोले—"मेरे विचार में उस बड़ी दूकान की छत अच्छी रहेगी। वह दूकान जो हमने पीछे मार्ग में देखी थी।"

सत्यनारायण बोला, "वह दूकान हुजूर जमना विधवा की है।"

"हाँ हाँ, वही। अच्छा—वह—जमना विधवा की है—जमना !"

"हाँ हुजूर, वह विधवा है। पिछले वर्ष उसका पति, रामभरोसे उस नाले में वह गया था।"

तहसीलदार साहब ने कुछ समय पश्चात् कहा, "हाँ हाँ, तो फिर वही स्थान उत्तम है—क्यों पेशकार साहब ?"

पेशकार ने हाथ बांधकर उत्तर दिया—"हुजूर ने बिलकुल ठीक कहा—खुली छत है—गाँव से बाहर भी है, हवा भी वहाँ की स्वच्छ है।"

सत्यनारायण बोला—"जैसी हुजूर की इच्छा। और यदि हुजूर स्वीकार करें तो मेरे मकान की छत पर डेरा लगवा लें। वह छत उससे अधिक चौड़ी और खुली है।"

पेशकार बोला—"नहीं नहीं, वही स्थान ठीक रहेगा।"

मुन्शी अब्दुर्रहमान ने एक आँख मीचकर धीरे से पेशकार के कान

पूर्ण एवं पैतृक परामर्श से सागरा के ब्राह्मणों ने गांव की तीन नव-वधुओं राम वेदी, दुलारी और खेतरी को पृथ्वी के इन देवताओं की सेवा में भेंट की। क्योंकि मनुष्य को अपनी लोक-लज्जा तथा आत्म सम्मान से प्राण अधिक प्रिय होते हैं और निर्धन कृषकों की जीवन-निधि, चाहे वे ब्राह्मण ही क्यों न हों, यही भूमि है, जिसे जोत-बोकर वे अपना पेट पालते हैं। वही भूमि यदि नीलाम हो गई या मालिकों ने उनसे छीन ली तो फिर वे निर्धन असहाय लोग क्या कर सकते हैं। पेट की आधीनता सब कुछ करा देती है। परन्तु जमना के मन में सहसा किसी ने पाषाण के टुकड़े भर दिये थे कि वह अभागिन इसी हठ पर स्थिर थी कि वह भूखी प्राण दे देगी, भले ही उसके खेत छिन जायें और दूकान निलाम कर दी जाय, परन्तु वह तहसीलदार के पास कदापि न जायगी। उसे अपने स्वर्गीय स्वामी की सौगन्ध, अपने नन्हे शिशु की सौगन्ध।

परन्तु जमना की यह हठ गांव वालों के हित के लिये ठीक नहीं थी। अब तो गांव के एक दो प्रौढ़ ब्राह्मणों का अपमान भी किया जा चुका था। उनकी सफेद दाढ़ियां नोची गईं और उनकी खद्दर की [illegible]-मोटी पगड़ियां उतार कर उनकी चिन्दिया पर इतने थप्पड़ लगाए गए कि उनकी आंखों में अश्रु झलक आए थे। रामदेवी, दुलारी और खेतरी के बलिदान से भी पृथ्वि के देवता की भूख शांत न हुई। यद्यपि तहसीलदार साहब अपने मुख से कुछ न कहते थे, देवताओं को बोलते हुए कब किसने देखा है? वे तो सदैव मौन रहते हैं, परन्तु पुजारी को ज्ञात होता है कि इस समय इष्ट-देव को किस भेंट की आवश्यकता है। सागरा-निवासी भी जानते थे, परन्तु वे स्वयं बहुत चिन्तित थे कि क्या करें, क्या न करें। अपने घर की बहू-बेटी होती तो किसी प्रकार उसको तैयार कर लेते, परन्तु जमना! जमना विधवा तो एक ही कुलटा स्त्री थी—न वह दूकान पर निर्लज्ज होकर पुरुषों की भांति काम करती, न आज गांव पर यह आपत्ति टूटती।

यह सब संकट उसी के कारण आया था। घास के गट्ठे पहुँचाते-पहुँचते दूसरे गांव से अण्डे और मुर्गियां लाते-लाते और मक्खन, आटा और बासमती के सुगन्धित चावल देते-देते ये निर्धन ब्राह्मण तंग आगए थे और हर समय इसी चिन्ता में डूबे रहते थे कि जमना को किस प्रकार राजी किया जाये। रामदेई, दुलारी और खेतरी ने उसके आगे अपने मर्म, अपनी आन्तरिक वेदना का करुणा-जनक वर्णन किया और उसे बताया कि केवल इसी के कारण उनका सतीत्व नष्ट किया गया और अब भी समय है कि वह ग्राम-वासियों को अनादर और विनाश से बचा सकती है, यदि वह—वह मान जाय। क्या वह इस संकट के समय भी ग्राम-वासियों के काम न आएगी ? क्या वह इतना भी बलिदान न दे सकेगी ? और फिर उस पर व्यंग्य करने वाला और लांछन लगाने वाला कौन था—वह तो विधवा थी।

जमना ने झल्लाकर कहा—"हां मैं विधवा हूँ, इसी कारण तुम अपने सुख और आराम के लिये मेरी आहुति देना चाहती हो। यदि आज मेरा पति जीवित होता तो तुम्हारी तरह बातें करने वालों की जिह्वा खींच लेता और तुम्हारी चुटिया पकड़कर इस प्रकार घसीटता कि यह मोम की भांति चमकते सिर घड़ी भर में गंजे हो जाते। कलमुहियो, अपना सतीत्व बेचकर मेरा सौदा करने आई हो ?"

खेतरी ने क्रोध के आवेश में चिल्लाकर उत्तर दिया—"आज तुम यह बातें कर रही हो, परन्तु मैं कहती हूँ कि यदि आज तेरा पति जीवित होता तो वह स्वयं तेरी चुटिया पकड़कर उस पापी तहसीलदार के पास ले जाता—उस प्रकार कि जिस प्रकार हमारे पति" और खेतरी इससे अधिक और न कह सकी। क्रोध और वेदना से उसके आंसू बहने लगे। उसे रोते देखकर रामदेई और दुलारी भी रोने लगीं और फिर जमना भी......

दूसरे दिन जमना का मन डोल रहा था—वह जाय या न जाय ? एक ओर कुआं, दूसरी ओर खाई। वह स्वयं देख रही थी किस प्रकार

गांव के बड़े-बूढ़ों का अपमान किया जा रहा था, उसे इस बात का भी भय था कि लगान में वृद्धि हो जाएगी और गांव वाले आजीवन उसे कोसेंगे। बहुत से लोगों को कारावास का दण्ड मिलेगा...उसके मन में आया कि वह आत्महत्या करले। फिर तो गांव इस संकट से मुक्त हो जायगा। परन्तु उसका एक नन्हा-सा शिशु था और फिर वह स्वयं भी मरना नहीं चाहती थी। यह दुष्ट विचार केवल क्षण भर के लिये उसके मन में आया और दूसरे क्षण उसने उसे दूर हटा दिया। आखिर होगा क्या ?

क्या गांव वालों के हित के लिये वह इतना बलिदान न कर सकती थी, यह एक बलिदान ही तो था, जैसा कि गांव के नम्बरदार ने बताया था। "यह वास्तव में पाप न होगा, इस प्रकार के बलिदान की धर्म-शास्त्रों में भी आज्ञा है।" बूढ़े नम्बरदार ने ऐसा पढ़ा था। उसने अपनी पगड़ी उतारकर जमना के पैरों में भी रख दी और रुद्ध कंठ से उससे विनती की कि वह गांव को संकट से बचाले। तहसील वालों के अत्याचार दिन-प्रति-दिन बढ़ते जा रहे थे और यदि यही स्थिति रही कुछ ही दिनों में इस गांव के भीतर घास का एक तिनका भी न ...। उनके पशु शरद्काल में भूखों मर जाएंगे। इस संकट से बचने का केवल एक ही उपाय था। क्या जमना अपने वृद्ध धर्मगुरु की प्रार्थना स्वीकार कर लेगी ?

जमना यह बातें सुनकर मौन होगई। उसने चादर से अपनी आंखों के आंसू पोंछ डाले और धरती से घास के तिनके तोड़ने लगी।...

दूसरे दिन तहसीलदार साहिब सागरा से विदा हो गये। जाते समय उन्होंने गांव के बूढ़े नम्बरदार को प्रसन्न-मुख आश्वासन दिया कि न तो वह लगान में वृद्धि करेंगे और न ही किसी को कारावास का दण्ड देंगे। अपितु वे बूढ़े नम्बरदार के लिये जैलदारी की सिफारिश करेंगे। उन्हें अकस्मात अनुभव हुआ कि इस गांव के निवासी बहुत

सज्जन, सत्कारी और आज्ञाकारी हैं और वे उच्च अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करायेंगे। मुंशी लब्धुर्रहमान और पेशकार घसीटाराम भी बहुत प्रसन्न थे। गांव के पंचों ने उनकी भी मुट्ठी गरम करदी थी। तहसील वाले भी प्रसन्न थे और तहसील के पशु भी, जिन्हें हरी घास और नई मकई के दाने प्रतिदिन खिलाये गये थे।

जब तहसील वालों का काफला गांव से चला तो कई मन बासमती के सुगन्धित चावल खच्चरों पर लदे हुए थे। एक बड़े टोकरे में एक मजदूर मुर्गियां लिये जा रहा था जो पंखों को फड़फड़ा कर बार-बार कुड़कुड़ाती थीं। दो ब्राह्मण तहसीलदार के घोड़े की बाग थामे हुए थे और तहसीलदार के शेष कर्मचारियों के साथ-साथ भी-एक-एक आदमी इसी प्रकार बाग थामे चल रहा था।

गांव की सीमा के बाहर आकर पेशकार ने कहा—"हुजूर! खलायन्ना गांव की भी कुछ मसलें अभी बाकी हैं, यहां से कोई दस कोस होगा।"

घोड़ों की बागें मौजा खलायन्ना की ओर मोड़ दी गईं। पतली-सी पगडण्डी पर चलता हुआ यह लम्बा काफ़ला पिंडारों का एक समूह प्रतीत होता था, जो निहत्थी प्रजा से अपनी रक्तिम पिपासाओं को शान्त करने के लिये कर प्राप्त करने जा रहा हो। पगडण्डी एक ऊंचे पहाड़ के चारों ओर चक्कर खाती हुई ऊपर उठती जा रही थी। काफ़ला चलता गया और भयभीत ब्राह्मण मूक, पत्थर से, खड़े उसे देखते रहे। उन्हें विश्वास न हुआ कि तहसीलवाले उनके गांव से चले गये हैं और अगले कई वर्षों तक इधर फिर न आएंगे। उन्हें भ्रम था कि जब वे वापस गांव में पहुंचेंगे तो तहसीलवालों को गांव में उपस्थित पाएंगे। बूढ़े नम्बरदार का विचार था कि तहसीलवालों का उनके गांव में आगमन किसी आने वाली भारी विपत्ति का सूचक था और आकाश के देवताओं का प्रकोप बिजली बनकर नागरा पर टूटेगा। यह [illegible] सूचक विचार आते ही उसका समस्त शरीर कांप उठा।

ा कर प्राप्त कर चुके थे और अब निःशंक गति से खलायन्ना की
ा में जा रहे थे। उन्होंने मुड़कर एक बार भी सागरा की ओर
टपात न किया, जिसे उन्होंने अब एक चचोड़ी हुई हड्डी की भांति
: ओर फेंक दिया था। शनैः-शनैः यह काफ़ला चलता हुआ ऊपर
ाडण्डी पर फैली हुई धुंध में लुप्त होगया और सागरा के निश्चल,
र्जीव, मूर्तिवत् खड़े हुए प्राणियों में चेतना उत्पन्न हुई। शुष्क होठों
र जिह्वा फिरने लगी और शान्ति एवम् स्वतन्त्रता के दीर्घ निःश्वास
नेकलने लगे।

इस मानवी समाज में एकता तथा समानता नहीं है, यहाँ नारकीय अत्याचार की अंधी बिजली ऊपर से टूटती है और लपकती हुई समाज के निम्नतर स्तर तक जा पहुँचती है जहां इसका प्रहार सबसे अधिक कठोर और विनाशकारी होता है। समाज के अन्धे विधान का वह प्रकोप जो सागरा के ब्राह्मणों पर पड़ा, एक बिजली बनकर जमना पर टूटा। जमना—स्वर्णमूर्ति की भांति जगमग-जगमग करती प्रतिमा, जिसने रात गांववालों के हित के लिए अपने लावण्यमय यौवन की कोमलताएँ पिंडारों के सरदार की कामातुर गोद में मोतियों की ा बखेर दी थीं। वही जमना आज तहसीलवालों के कूच कर जाने के पश्चात् ब्राह्मणों के क्रोध और रोष का शिकार बनी। यदि जमना यह समझती थी कि अपने इस बलिदान से उसने गांववालों को अनुग्रहीत कर दिया था तो यह उसका भारी भ्रम था। यदि उसकी धारणा यह थी कि उसने कोई पवित्र कार्य किया तो यह भी उसका भ्रममात्र था। यदि गाँव के नम्बरदार ने उसको ऐसा करने के लिये बाध्य किया तो यह एक परम कर्तव्य था जो नम्बरदार होने के नाते गांव की सुरक्षा के लिये उस पर लागू हुआ था। परन्तु वे अब यह सहन करने को कदापि उद्यत नहीं थे कि वह स्त्री जिसके नग्न, लावण्यमय रूप के कारण उन पर यह भारी विपत्ति आई थी, यूँ गाँव में दनदनाती फिरे और प्रतिदिन गांववालों को विपत्तियों में फँसाती फिरे। क्योंकि

धरती के देवताओं के मुंह जब लहू लग जाता है तो उनकी पिपासा और अधिक जाग्रत हो जाती है और यद्यपि सब देवता जबान नहीं रखते, परन्तु सब की दृष्टियां समान नहीं होती हैं। इस कारण क्या यह सम्भव न था कि तहसीलदार साहब के पश्चात् थानेदार साहब आ धमकें और उनके पश्चात् जंगलों के अफ़सर और फिर चुंगी के अधिकारी......।

इन अनेक कारणों से बहुत विचार-विनमय और तर्क-वितर्क के पश्चात् गांव की बिरादरी ने निर्णय किया कि जमना को बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया जाय, उसे घरों में प्रविष्ट न होने दिया जाय, उसकी दूकान से कोई वस्तु न खरीदी जाय और उसका पूर्ण रूप से बाईकाट कर दिया जाय, जल-स्रोत पर उसे आने न दिया जाय, कोई स्त्री उससे वार्तालाप न करे और उसे शीघ्र से शीघ्र गांव छोड़ने के लिये बाध्य किया जाय। इसके अतिरिक्त बिरादरी ने एक भारी यज्ञ रचाने का निर्णय किया, जिसमें समस्त सागरानिवासी प्रायश्चित करें और रामदेई, दुलारी और खेतरी की शुद्धि के पश्चात् उनको नया जन्म दिया जाय और शिवजी के पवित्र मन्दिर में एक सहस्र बार परिक्रमा के पश्चात् यह प्रार्थना की जाय कि भविष्य में सागरा-निवासी इस प्रकार के दैवी प्रकोप से सुरक्षित रहें।

कदाचित् जमना का हृदय इस आकस्मिक प्रहार को सहन न कर सका। उस दिन के पश्चात् उसे किसी ने मुस्कराते हुए नहीं देखा। ऐसा प्रतीत होता कि उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया है। क्योंकि उसकी आंखें अब ऊपर न उठती थीं। उसे ऐसा लगता था मानो कोई अज्ञात परन्तु सूक्ष्म पदार्थ पहले था परन्तु अब नहीं रहा; मानो सहसा किसी ने गला घोंटकर उसे मार डाला हो। अन्तस्तल के इस भयानक शून्य को ग्रामवासियों के निर्दयतापूर्ण व्यवहार ने और भी असह्य कर [illegible]। कुछ

दिन वह खोई खोई-सी रही। उसके नेत्रों में अश्रु न रहे, न अपने बच्चे के लिये पहला सा प्यार। जब स्त्रियां जलस्रोत पर पानी भरने गगरियां उठाये उसकी दूकान के आगे से निकलतीं तो उनके व्यंग्य और विषैले बोल इसके घायल हृदय को छेदकर निकल जाते। परन्तु उसके नेत्रों में अब आंसू भी न रहे थे जो उसके कपोलों पर ढुलक-ढुलक कर उसकी झुलसी हुई आत्मा को शीतल कर देते। कुछ ही दिनों में उसका लावण्य मिट गया। उसमें यौवन था, सौन्दर्य था, मोहकता भी थी, परन्तु आत्मा मर गई थी, और जिस दिन प्रायश्चित का यज्ञ रचाया गया और नीले आकाश ने, हरियाले खेतों ने, स्त्रियों के रंगीन वस्त्रों ने, चमकते आभूषणों और संगीत भरे गीतों ने जमना के अन्तस्तल में उथल-पुथल मचादी, तब वह व्याकुल हो उठी और भागी-भागी बूढ़े नम्बरदार के पास पहुंची और उसके चरणों में जा गिरी, परन्तु बूढ़े नम्बरदार ने अपने पवित्र पांव परे खींच लिये और उसे झिड़ककर कहा कि वह एक पतित नारी है, और उसे यज्ञ में सम्मिलित कर प्रायश्चित करने का कोई अधिकार नहीं है। बिरादरी का निर्णय सबके लिये मान्य था।

सारा दिन यज्ञ होता रहा और बूढ़े ब्राह्मण संस्कृत और हिन्दी के मिले-जुले अशुद्ध श्लोकों का उच्चारण करते रहे। हवन और सामग्री का सुगन्धित धूआं ऊपर आकाश में उठता रहा—खेतरी, दुलारी और रामवेई ने नया जन्म लिया, गांव के प्रत्येक व्यक्ति ने प्रायश्चित किया। घी, मकई के आटे और गुड़ का बना हुआ हलुवा प्रसाद के रूप में बांटा गया, परन्तु जमना को किसी ने न पूछा और न ही उसे यज्ञ-मंडप के समीप आने दिया गया।

संध्या समय शिवजी के मंदिर की परिक्रम करने और शंख घड़ियाल बजाकर आरती उतारने के पश्चात् मंदिर के द्वार बंद कर दिये गये और सब लोग अपने-अपने घरों को चले गये। बहुत समय बीत जाने पर जमना शिवजी के मंदिर के समीप आई। वहां कोई न था और द्वार बन्द थे। उसने चाहा कि वह भी मंदिर की परिक्रमा

करे, परन्तु उसे द्वार खोलने का साहस न हुआ। वहीं द्वार के बाहर खड़ी होकर उसने अपने सिर की ओढ़नी गले में डाल ली और हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। वह बहुत समय तक इसी प्रकार वहां खड़ी रही। अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्य की अन्तिम किरणों का स्वर्णिम आवरण चीड़ और देवदारु के वनों पर फैलता हुआ पर्वत-श्रेणियों की अन्तिम चोटियों पर आपहुंचा और फिर क्षितिज की रक्तिम रेखामात्र रह गया। कुछ समय पश्चात् क्षितिज की यह रक्तिम रेखा भी विलीन हो गई और पर्वत और उनकी हरियाली, घाटी और शिलाएँ सब नीले और काले रंग के भयंकर मिश्रण में लुप्त हो गये। सन्ध्या के घिरते अन्धकार में जमना ने मन्दिर के देवता से बार-बार पूछा कि क्या उसके पाप का कोई प्रायश्चित नहीं है? क्या वह वस्तुतः गांववालों की अपेक्षा अधिक अपराधी और दूषित थी? परन्तु अनेकों प्रार्थनाओं के पश्चात् भी जब मन्दिर के देवता ने कोई उत्तर न दिया और द्वार न खुले और रात के सघन अन्धकार में स्वयं शिवजी का मन्दिर उस पर हँसता-सा प्रतीत हुआ तो सहसा उसकी श्रद्धा और भक्ति की दीवारें गिर गईं। उसका घायल अहम् उसके वक्ष में नाग की भांति फुफकार उठा और तीव्र गति से जमना शिवजी के मन्दिर से लौट आई।

वह पगडण्डी जो गांव से बाहर घाटियों और वनों में से होती हुई जा रही थी, रात्रि के सघन अंधकार में आशा की अन्तिम किरण बन कर चमक रही थी। परन्तु उस रात सागरा के किसी ब्राह्मण ने उस पगडण्डी पर जाती हुई उस स्त्री को नहीं देखा, जिसके केश बिखरे थे, जिसके गले में एक मैली ओढ़नी के दो छोर लहरा रहे थे जिसके मुख पर न उन्माद था और न विषाद, न आशा, न निराशा और न जीवन और न मृत्यु—जो तीव्र गति से भागी जा रही थी। उस स्त्री को किसी का भय न था। उसको रोकने वाला कोई न [illegible] और शिलाओं की कठोर नीरवता में ऐसी भयानक निस्तब्धता [illegible]

नानो वे किसी के मिटते हुए जीवन का अन्तिम विनाशकारी दृश्य देख रहे हों। एक ऐसा सन्नाटा था जिसके पर्दे में किसी आने वाले तूफान की गर्जना सुनाई देती थी।

परन्तु उस रात सागरा के किसी ब्राह्मण ने उस पगडण्डी पर जाती हुई स्त्री को नहीं देखा। हाँ, कुछ दिनों के पश्चात् उन्होंने सुना कि खोईराटा गाँव के समीप एक युवती का शव पाया गया। उसकी आकृति जमना से मिलती-जुलती थी। गाँव के एक बूढ़े नम्बरदार ने जमना के बच्चे का पालन-पोषण का भार अपने ऊपर ले लिया और जमना की भूमि और दूकान भी अपने हाथ में ले ली।

बचपन

रफ़ी को नीला से बहुत प्रेम था। यूं तो रफ़ी को प्रत्येक वस्तु से प्रेम था। जब वह सुन्दर रंगों वाली तीतरियों को वाटिका में इधर से उधर उड़ते देखता तो उसका मन आनन्द-विभोर हो उठता—वह हर्षोन्मत्त हो चीखता-चिल्लाता हुआ, फूलों की क्यारियों को रौंदता हुआ भागा-भागा फिरता और झट से अपनी फुंदनों वाली टोपी को सिर से उतारकर लाजवर्दी रंगों वाली एक तीतरी को उसमें बन्द कर लेता। फिर वह धीरे-धीरे प्यार और विस्मयपूर्ण नेत्रों से उसकी ओर देखता; उसे अपनी छोटी-छोटी नरम-नरम अंगुलियों में पकड़कर इधर-उधर घुमता। तीतरी के पर फड़फड़ाते और सहसा उसका मन दयाभाव से इतना आर्द्र हो जाता कि उसके नेत्रों में आंसू चमकने लगते और वह उसे झटपट छोड़ देता। तीतरी सौंफ के पौधों से परे, शफ़तालुओं के पेड़ों के ऊपर से होती हुई दूर उड़ जाती। रफ़ी दया, प्यार और आश्चर्य के मिश्रित भावों से उसकी ओर देखता और सोचता रह जाता—"आह! कितनी अच्छी थी वह तीतरी!" उसके मन में पश्चात्ताप होने लगता। इतने में एक और तीतरी, हरे और पीले-पीले परों वाली, पहली तीतरी से भी अधिक सुन्दर और चमत्कार, संधदराज के फूलों के ऊपर उड़ती हुई दिखाई देती, और वह अपनी छोटी-छोटी टांगों से लम्बी-लम्बी छलांगें मारता हुआ संधदराज के फूलों की ओर

कि अब्बा बहुत बड़े आदमी हैं और नर्मी से बहुत कम बात करते हैं, फिर भी वह उन्हें बहुत चाहता था। जब वे दौरे पर जाते तो वह सदा हठ करता, "मुझे भी ले चलो, अब्बा! ले चलो ना अब्बा! अच्छे अब्बा जी! अब्बा जी!" परन्तु इस आग्रह का, इन मिन्नतों का अब्बा पर बहुत कम प्रभाव पड़ता। और तो और, वे संध्या समय सैर करने के लिये भी अपने मित्रों के साथ चले जाते और वह बेचारा चीखता ही रह जाता। अब्बा दौरे से लौटते तो वह बहुत समय पहले ही एक ऊँचे टीले पर चढ़कर उनका पथ निहारने लगता और जब वे घोड़े पर सवार नदी के निकट पगडंडी पर दृष्टिगोचर हो जाते तो वह हर्षोन्मत्त होकर चिल्ला उठता, "अहा! अब्बा जी आए, वो आए अब्बा जी, वो आए, वो आए।" हां, वह अब्बा को बहुत चाहता था।

परन्तु मुहब्बत तो उसे नीला से ही थी। नीलाबेराम फतहदीन चपरासी की पुत्री थी। वह आयु में कदाचित् रफ़ी से एक वर्ष बड़ी ही थी—शायद इसी कारण वह बेचारे रफ़ी की परवाह तक नहीं करती थी। सम्भव है, इस बात का कोई और भी कारण हो, परन्तु उसका रफ़ी को कोई पता नहीं था। यह बात निश्चित थी कि वह ... अधिक नीला को चाहता था, नीला उससे उतनी ही उदासीन थी। उसने तो आज तक रफ़ी से कभी बात भी नहीं की थी। बल्कि जब कभी वह रफ़ी के पास से निकलती (और ऐसे अवसर रफ़ी को बहुत कम मिले होंगे।) तो सिर उठाकर अपने घुंघराले बालों को झटकाकर उसके पास से निकल जाती। बेचारे रफ़ी को उस समय बहुत भारी मानसिक कष्ट होता था। वह उस छोटे-से कस्बे के प्रत्येक नन्हें गडरिये से हँस-हँसकर बात करती थी, परन्तु बेचारे रफ़ी को ही यह अनुपम आनन्द प्राप्त नहीं हो पाता था।

वैसे तो यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी—रफ़ी के अबोध जीवन में ऐसे कष्टप्रद अवसर बहुत कम आए थे। अन्यथा दिन भर तो वह नीला को याद भी न रखता था। स्कूल का बंधन, अध्यापक की

घुड़कियां, गणित के प्रश्न, गुणा, भाग, जमा, घटा, वाटिका में उछल-कूद—बस, इसी चक्कर में दिन बीत जाता था। रात के समय जब वह श्रान्त-क्लान्त होकर बिस्तर पर लेटता तो बस फिर प्रातः काल अम्मी ही उसे जगाती थीं।

परन्तु जब नीला सामने आजाती, अथवा जब वाटिका में अकेले खेलते-खेलते उसका मन उकता जाता तो नीला का सुन्दर, गुड़िया जैसा मुखड़ा याद करके उसके मन में एक विचित्र उलझन-सी पैदा हो जाती। उसके मन में आता कि वह स्वयं नीला को वहां बुला ले। भला वह उसे क्या कहेगी? अच्छा तो, भला वह केवल उससे ही क्यों नहीं बोलती? एक दिन जब वह यूंही खेलता-खेलता नदी के किनारे चला गया था, जहां नदी पर्वत से टकराकर अपना बहाव बदलकर दक्षिण दिशा में मुड़ जाती थी, तो उसने तुंग के एक बहुत बड़े वृक्ष के नीचे अपने बहुत से साथी देखे। उनमें से कुछ तो पतंग उड़ा रहे थे, कई बांसुरी बजा रहे थे और कुछ बिछुड़ी हुई भेड़-बकरियों को आवाजें दे-देकर वापिस बुला रहे थे। दो-तीन बच्चे नदी के तट पर बैठ हुए स्नान कर रहे थे और कभी-कभी नदी के नीले पानी में तैरने का विफल प्रयास कर रहे थे। एक ओर मनोहर, सादिक, नूरां, केयरी, हसनी तथा अन्य कई लड़के-लड़कियां रेत के टीले खोदकर भव्य-भवन बना रहे थे। रफ़ी भी जाकर उनके साथ खेलने लगा। उनमें नीला भी थी। रफ़ी बहुत देर तक उनके साथ खेलता रहा, परन्तु न जाने क्यों, न तो उसने नीला से बात की और न ही नीला ने उससे। खेलते-खेलते नीला और केयरी झूले के समीप चली गईं और झूले पर बैठकर पेंग बढ़ाने लगीं। रफ़ी आश्चर्यचकित होकर उनकी ओर देखने लगा। उसने आज तक कभी इतनी ऊंची पेंग नहीं बढ़ाई थी। उसे तो झूले पर बैठने

दूसरे झूले से उतरकर पास खड़ी हुई मुस्करा रही थी।

रफ़ी डरते-डरते झूले पर चढ़ा। परन्तु वह पेंग बढ़ाने के ढंग से अपरिचित था। विवश होकर उसे कहना पड़ा—"मुझे झुला दो।"

यह सुनकर सब लड़के-लड़कियाँ हँस पड़े। रफ़ी को ऐसा लगा कि नीला की हँसी उन सब से ऊँची थी। वह लज्जित हो उठा और झूले से उतरकर सीधा घर की ओर चल पड़ा। वह दुःखी और उदास था। वह किसी पर क्रुद्ध नहीं था, केवल उसे बार-बार नीला पर क्रोध आ रहा था। घर की ओर जाते हुए उसकी सिसकियाँ तीव्र होती गईं। जब वह बड़े द्वार में प्रविष्ट हुआ तो वह बहुत जोर-जोर से रो रहा था।

धाय ने पूछा, "क्या बात है?"

"क्या बात है बेटा?" "

"क्यों रो रहे हो?"

"बेटा रफ़ी, क्या बात है?'

"मेरे रफ़ी को किसने मारा है?"

"नन्हें, तुम इतनी देर कहाँ खेलते रहे? यहाँ बेचारा माली डेढ़-दो घण्टे से तुम्हें खोज रहा था। बोलो बेटा रफ़ी?"

परन्तु रफ़ी देर तक रोता रहा। अन्त में जब वह चुप हुआ तो सिसकियों के बीच में एक-एक कर बोला, "मैं······मैं······एक झूला······एक झूला लगवा दो अम्मी!"

नीला रफ़ी के घर कई बार आई—कभी अम्मी से मिठाई लेने के लिये, कभी कोई कपड़ों का जोड़ा लेने के लिए, कभी पके हुए अखरोट लेने के लिए जो उसके घर के आँगन में लगे हुए पेड़ पर लगते थे। परन्तु रफ़ी उसे देखता ही रह जाता। कई बार रात को जब धाया उसे परियों की कहानियाँ सुनाती तो वह सोचा करता कि क्या परियाँ नीला के समान सुन्दर तथा गर्वीली हुआ करती हैं; परन्तु धाय से यह बात पूछने का उसमें कभी साहस नहीं हुआ। नीला उसे एक गुड़िया के समान प्यारी लगती थी। कभी वह सोचता, उसके गाल

कितने लाल-लाल हैं—और उसके होंठ ? उसके अपने गालों अथवा होंठों का रंग तो इतना निखरा हुआ नहीं था। अच्छा तो यदि वह स्वयं भी नीला जैसा सुन्दर बन जाए, तो क्या फिर भी नीला उससे बात नहीं करेगी ? यह विचार उसके मन में उस समय आया जब कि वह संबलू की एक झाड़ी से पके हुए, लाल-लाल संबलू तोड़कर खा रहा था। इन संबलुओं का रंग कितना लाल था ! संबलू खाते-खाते उसने चार-पांच संबलू अपने गालों, ठोड़ी और होंठों पर मल लिए और उनको लाल कर डाला। इतने में सहसा उसे निकटवर्ती झाड़ी के समीप एक सुन्दर तीतरी दिखाई पड़ी और वह नीला के सम्बन्ध में सब कुछ भूल गया। वह कितनी ही देर तक तीतरियां पकड़ने में संलग्न रहा। आज उसने सात सुन्दर-सुन्दर तीतरियाँ पकड़ीं और उन्हें अपने छोटे-से रूमाल में बाँधकर घर ले गया।

जाते ही अम्मा ने पूछा, "यह मुंह क्यों लाल कर रखा है ? शायद आज फिर संबलू खाते रहे हो ? मैंने तुम्हें कई बार समझाया है कि संबलू मत खाया करो। परन्तु तुम मानते ही नहीं हो। क्यों ? और इन बेचारी तीतरियों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

जब रफ़ी को एक-दो थप्पड़ लगे तो वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

ईद के दिन पूर्ववत् फ़त्तहदीन की लड़की एक रूमाल में कुछ खूबानियां बांधकर रफ़ी के घर देने आई। उस समय रफ़ी घर पर नहीं था वह वाटिका में, बाढ़ के समीप, चमेली के पौधों से फूल तोड़ रहा था और एक माला बनाने का प्रयत्न कर रहा था। नीला जब खूबानियां देकर वापिस जाते हुए वाटिका के निकट से निकली तो रफ़ी को अन्दर बाढ़ के समीप बैठे देखकर रुक गई। वह माला बनाने व्यस्त था।

रफ़ी बेचारे को पता ही नहीं था कि नीला समीप ही खड़ी है। सहसा नीला ने बाढ़ से एक टहनी तोड़ी। रफ़ी ने सिर उठाकर देखा तो नीला थी। उसका मुख लज्जा से लाल हो उठा। हार बनाना छोड़कर वह बाढ़ के समीप खड़ा हो गया।

दूसरे झूले से उतरकर पास खड़ी हुई मुस्करा रही थी।

रफ़ी डरते-डरते झूले पर चढ़ा। परन्तु वह पैंग बढ़ाने के ढंग से अपरिचित था। विवश होकर उसे कहना पड़ा—"मुझे झुला दो।"

यह सुनकर सब लड़के-लड़कियाँ हँस पड़े। रफ़ी को ऐसा लगा कि नीला की हँसी उन सब से ऊँची थी। वह लज्जित हो उठा और झूले से उतरकर सीधा घर की ओर चल पड़ा। वह दुःखी और उदास था। वह किसी पर क्रुद्ध नहीं था, केवल उसे बार-बार नीला पर क्रोध आ रहा था। घर की ओर जाते हुए उसकी सिसकियाँ तीव्र होती गईं। जब वह बड़े द्वार में प्रविष्ट हुआ तो वह बहुत जोर-जोर से रो रहा था।

धाय ने पूछा, "क्या बात है ?"

"क्या बात है बेटा ?" "

"क्यों रो रहे हो ?"

"बेटा रफ़ी, क्या बात है ?'

"मेरे रफ़ी को किसने मारा है ?"

"नन्हें, तुम इतनी देर कहाँ खेलते रहे ? यहाँ बेचारा माली डेढ़-दो घण्टे से तुम्हें खोज रहा था। बोलो बेटा रफ़ी ?"

परन्तु रफ़ी देर तक रोता रहा। अन्त में जब वह चुप हुआ तो [illegible] के बीच में रुक-रुक कर बोला, "मैं······मैं······एक झूला······एक झूला लगवा दो अम्मी !"

नीला रफ़ी के घर कई बार आई—कभी अम्मी से मिठाई लेने के लिये, कभी कोई कपड़ों का जोड़ा लेने के लिए, कभी पके हुए अखरोट लेने के लिए जो उसके घर के आँगन में लगे हुए पेड़ पर लगते थे। परन्तु रफ़ी उसे देखता ही रह जाता। कई बार रात को जब धाया उसे परियों की कहानियाँ सुनाती तो वह सोचा करता कि क्या परियाँ नीला के समान सुन्दर तथा गर्वीली हुआ करती हैं; परन्तु धाय से यह बात पूछने का उसमें कभी साहस नहीं हुआ। नीला उसे एक गुड़िया के समान प्यारी लगती थी। कभी वह सोचता, उसके गाल

कितने लाल-लाल हैं—और उसके होंठ ? उसके अपने गालों अथवा होंठों का रंग तो इतना निखरा हुआ नहीं था। अच्छा तो यदि वह स्वयं भी नीला जैसा सुन्दर बन जाए, तो क्या फिर भी नीला उससे बात नहीं करेगी ? यह विचार उसके मन में उस समय आया जब कि वह संवलू की एक झाड़ी से पके हुए, लाल-लाल संवलू तोड़कर खा रहा था। इन संवलुओं का रंग कितना लाल था ! संवलू खाते-खाते उसने चार-पांच संवलू अपने गालों, ठोड़ी और होंठों पर मल लिए और उनको लाल कर डाला। इतने में सहसा उसे निकटवर्ती झाड़ी के समीप एक सुन्दर तीतरी दिखाई पड़ी और वह नीला के सम्बन्ध में सब कुछ भूल गया। वह कितनी ही देर तक तीतरियां पकड़ने में संलग्न रहा। आज उसने सात सुन्दर-सुन्दर तीतरियां पकड़ीं और उन्हें अपने छोटे-से रूमाल में बांधकर घर ले गया।

जाते ही अम्मा ने पूछा, "यह मुंह क्यों लाल कर रखा है ? शायद आज फिर संवलू खाते रहे हो ? मैंने तुम्हें कई बार समझाया है कि संवलू मत खाया करो। परन्तु तुम मानते ही नहीं हो। क्यों ? और इन बेचारी तीतरियों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ?"

जब रफ़ी को एक-दो थप्पड़ लगे तो वह जोर-जोर से रोने लगा।

ईद के दिन पूर्ववत् फ़तहदीन की लड़की एक रूमाल में कुछ खूबानियां बांधकर रफ़ी के घर देने आई। उस समय रफ़ी घर पर नहीं था वह वाटिका में, बाढ़ के समीप, चमेली के पौधों से फूल तोड़ रहा था और एक माला बनाने का प्रयत्न कर रहा था। नीला जब खूबानियां देकर वापिस जाते हुए वाटिका के निकट से निकली तो रफ़ी को अन्दर बाढ़ के समीप बैठे देखकर रुक गई। वह माला बनाने व्यस्त था।

रफ़ी बेचारे को पता ही नहीं था कि नीला समीप ही खड़ी है। सहसा नीला ने बाढ़ से एक टहनी तोड़ी। रफ़ी ने सिर उठ[illegible] तो नीला थी। उसका मुख लज्जा से लाल हो उठा। [illegible] छोड़कर वह बाढ़ के समीप खड़ा हो गया।

नीला बोली, "तुम्हारा नाम रफ़ी है ?"

"हाँ, रफी।"

"रफी ! रफी भी क्या नाम है ?" नीला ने अपनी छोटी-सी नाक को ऊंचा करके कहा।

"रफी नहीं, रफ़ी !"

नीला बोली, "मेरा नाम नीला है। हम वहां रहते हैं (अंगुली का संकेत करके)—वहां, उन अखरोट के पेड़ों के पीछे।"

रफ़ी कहने लगा, "हमारे यहां चमेली के फूल बहुत अच्छे हैं।"

नीला बोली, "हमारे यहां खूबानियां बहुत अच्छी होती हैं।"

रफ़ी कहने लगा, "हमारी वाटिका में भी बहुत अच्छी खूबानियां हैं।"

नीला ने सिर हिलाकर कहा, "झूठ ! हमारी खूबानियां सब से अधिक मीठी होती हैं।"

रफ़ी कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, "मैं पंग बढ़ा सकता हूं, बहुत ऊंची ले जा सकता हूं।"

"अच्छा ?" नीला ने ऐसे कहा मानो उसे रफ़ी की बात पर विश्वास न हुआ हो।

"मैं अपनी वाटिका के प्रत्येक पेड़ पर चढ़ सकता हूँ।"

"हुँह ?"

"मैं—मैं चमेली के हार बना रहा हूं, यह देखो।"

नीला बोली, "हम तुम से अच्छे हार बना सकते हैं। इधर लाओ फल।"

नीला हँसते हुए कहने लगी, "मैं कहती हूँ, तुम हार नहीं बना सकते। और क्या ?"

रफ़ी को क्रोध जो आया तो उसने नीला को एक करारी चपत रसीद कर दी। नीला ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उसको रोते देखकर रफ़ी बहुत चिन्तित हुआ। क्या करे और क्या न करे ? यदि अम्मी को पता लग गया कि उसने नीला को थप्पड़ लगाया है तो वह पिट जायगा। वह नीला को मनाने का यत्न करने लगा।

"अच्छा नीला, जाने दो, रोओ मत। मैं कहता हूँ, मत रोओ। देखो, मेरे पास तीतरियों के तीन सौ पर हैं। अन्दर डब्बे में बन्द रखे हैं। वे सब तुम्हें दे दूंगा। अच्छा लो, अब मत रोओ, मैं तुम्हें वे पर अभी लाकर देता हूँ।"

रफ़ी दौड़ता-दौड़ता घर गया और तीतरियों वाला डब्बा ले आया और डब्बा खोलकर नीला के सन्मुख रख दिया। "कितने अच्छे पर हैं, ये देखो, देखो ना ! नीला, मत रोओ, और ये सब फूल और हार भी तुम ले लो।" रफ़ी ने एक दो हार उठाकर नीला के गले में पहना दिये।

नीला रोते-रोते हँसने लगी।

उस दिन से नीला और रफ़ी दोनों साथ-साथ खेलने लगे। उन्होंने झाड़ियों से संबलू चुन-चुन कर खाए; अंगूर की लताओं से सोने की भांति चमकने वाले अंगूरों के दाने तोड़े, नीला के घर के आंगन में उगे हुए अखरोट के पेड़ के नीचे 'क़ाज़ी कोलड़ा' तथा बचपन के अन्य प्रिय खेल खेले। वे नदी के किनारे जाकर गड़रिये बच्चों के साथ नाचे; पैंगें बढ़ाईं, बांसुरियों के गीत सुने। कभी-कभी रफ़ी दुल्हा बनता और नीला दुल्हन, और घाटी के बीच में रहने वाले नन्हें-नन्हें गड़रिये बराती बने हुए शोर मचाते हुए काग़ज़ की डफ़लियां बजाते हुए भागते फिरते थे। बड़ा आनन्द आता था। और जब कभी नीला खेल [illegible] खेल में शरारत से किसी दूसरे लड़के को दुल्हा [illegible]

: ३ :

वे रंगो-बू

सिख दूकानदार ने जो आटा, नून, तेल बेचता था, धीरे से कहा, "मेरे मकान में थोड़ी-सी जगह खाली है, आप स्वयं चलकर देख लीजिये। किराया भी कम है—केवल ६) मासिक। चलिए, मैं स्वयं आपके साथ गली में चलता हूँ।"

उसने साथ वाली साइकिलों की दूकान के मिस्तरी को आवाज़ दी। "रहीमू! ओ रहीमू!! ज़रा मेरी दूकान का ख्याल रखना।"

"कोई चिन्ता न करें, सरदार जी।"

सिख दूकानदार जिस मकान में रहता था वह एक छोटा-सा मकान था। एक ही मंजिल, एक ही नहाने का कमरा। सीढ़ियों के पास एक छोटा-सा तंग कमरा खाली था और उसके साथ ही अन्दर की ओर ओर खुलता हुआ, एक छोटा-सा आंगन।

"बस इस छोटी-सी जगह के लिये ६) मासिक किराया?"

सिख दूकानदार ने एक फीकी-सी हँसी हँसते हुए उत्तर दिया— "तो और क्या? हम भी ६) ही देते हैं। बिजली तथा नल का किराया मिलाकर १२) हो जाते हैं। महीने भर में मैं लगभग ३०) ३५) रुपये कमाता हूँ। १२) मालिक मकान को दे देता हूँ। आठ दस रुपये वैद्य जी की भेंट कर देता हूँ। आप जानते हैं, बाल-बच्चों वाले घर में आठ

ाहर निकल आया। द्वार के निकट एक युवती हाथों में पुस्तक-राशि ाम्हाले हुए खड़ी थी। मुझे देखकर उसके मुख पर लालिमा दौड़ गई। वह उच्च स्वर में बोली, "बे मुंडू! जल्दी कर, कालिज को देर हो गई।"

"आया, बीबी जी!" नौकर हँसता हुआ सीढ़ियों से उतर रहा था—कोई सोलह सत्रह वर्ष का होगा, सांवल देह, हल्की मूंछें फूटी हुईं।

यहां नये मकान बन रहे थे। बीच-बीच में बहुत-सी भूमि अभी रिक्त पड़ी हुई थी। यहां रेत उड़ रही थी, और नाद करते हुए बच्चे एक-दूसरे पर रेत-मिट्टी फेंक रहे थे। नन्ही मुन्नी बालिकाएँ रेत के ढेरों पर बत्तखों की नाईं चलने का प्रयत्न कर रही थीं। कुछ बालिकाएँ एक लम्बी रस्सी पर कूदने में व्यस्त थीं। भुने हुए चने बेचने वाला निराश दृष्टि से बच्चों को देखता हुआ चला जा रहा था। इस रेत से भरे हुए मैदान से कुछ दूरी पर, सामने एक मकान पर मोटे-मोटे शब्दों में लिखा हुआ था, "किराये के लिए खाली है।"

द्वार खुला हुआ था। एक छोटा-सा दालान। उससे आगे खुला आंगन, जिसमें पानी के नल के नीचे बैठी हुई एक कुरूपा, मोटी स्त्री स्नान कर रही थी। वह निःसंकोच बोली, "आप मकान देखने आए हैं?"

मैंने मन में कहा, "और क्या तुम्हें देखने आया हूँ?" जैसे उसने मेरे मन की बात ताड़ ली हो, बोली, "अच्छा, आप दालान में ठहरिए, मैं अभी आती हूँ।"

थोड़ी देर में वह एक सफेद धोती पहने हुए आई। यह सोने का कमरा, यह बैठक, यह एक और कमरा, यह भी एक कमरा है। यह रसोई-घर है, तनिक साफ़-सुथरा नहीं है, परन्तु कल तक बिल्कुल ठीक-ठाक (सिर हिलाकर) हो जाएगा। किराया बीस रुपये। हम अगाऊ लेते हैं। अच्छे किरायेदारों को देते हैं। दूसरी मंजिल में एक राय साहब के 'घर वाले' रहते हैं। उनकी तीन पुत्रियां हैं, कालिज में

पढ़ती हैं। तीसरी मंजिल में एक प्रोफ़ेसर तथा उनका परिवार......"

मैंने पूछा, "और तीसरी मंजिल से ऊपर ?"

वह कुछ विस्मित होकर बोली, "तीसरी मंजिल से उपर ?—उस के ऊपर छत है, सोने के लिए खुला स्थान।

"हूं", मैंने यूंही रसोई के फ़र्श को पांव से कुरेदते हुए कहा।

"यह फ़र्श थोड़ा-सा खराब है, कल तक......(सिर हिलाकर)।

फिर मेरी ओर देखकर बोली; "आप विवाहित हैं ना ?"

"नहीं, परन्तु मेरे साथ मेरी मौसी होंगी, और मौसी की लड़की, और मौसी की लड़की की लड़कियां।"

"ओह, अच्छा, फिर तो ठीक है। परन्तु किराया पहले देना पड़ेगा, कम से कम दो महीनों तक। कई किराएदार किराया दिये बिना ही चल देते हैं।"

"हां, बहिन जी, तुम्हें पिछले महीने ही आठ रुपयों का घाटा उठाना पड़ा था।"

यह एक नव-युवती चुपके से कहीं से निकल आई थी। सुन्दर मुख, परन्तु कुछ उतरा हुआ। कुछ उदास-सी बड़ी-बड़ी आँखें, परन्तु शोक-ग्रस्त-सी। अधरों पर हल्की-हल्की मुस्कान, परन्तु फीकी, पश्चात्तापमग्न—मानो कह रही थी, इससे क्या फ़ायदा, वे दिन भर दफ्तर में क्लर्की करते हैं और मैं होठों पर 'सुर्खी' लगाकर बर्तन मांजती हूं। आखिर ऐसे जीवन से क्या लाभ ? वे संध्या समय दफ्तर से थके मांदे आते हैं और खाना खाकर फिर दफ्तर के कार्य में जुट जाते हैं और रात्रि को···। मेरे होठों की 'सुर्खी' को देखता ही कौन है ? हाय ! यह यौवन कितना नीरस एवं आनन्द-विहीन है।

"यह भी हमारे साथ ही रहती है।" मकान की स्वामिनी ने मुझे बतलाया। इनके···बिजली के दफ्तर में कार्य करते हैं।"

मैंने हाथ जोड़कर कहा, "जी, बहुत अच्छा, नमस्ते जी।"

क्लर्क की धर्मपत्नी ने प्रसन्न होकर कहा, "तो आप यह मकान किराये पर ले रहे हैं ?"

"जी सोच रहा हूँ, मेरे साथ मेरी मौसी होगी, मौसी की लड़की, मौसी की लड़की की लड़कियां और......"

"तो इसमें क्या आपत्ति है ?" उसने अकारण ही हँसते हुए कहा। "हम सब बहनें मिल-जुल कर रहेंगी। घरों में ऐसा ही होता है ना जी ? और फिर यह मकान बहुत अच्छा है।" उसने रसोई के फ़र्श को पाँव से बजाते हुए कहा।

"बस यह फ़र्श थोड़ा-सा ख़राब है।" मोटी कुरूपा स्त्री यंत्रवत् बोल उठी "कल तक...(सिर हिलाकर)...।"

मैं धीरे-धीरे दालान की ओर मुड़ने लगा। युवती की आँखें कह रही थीं, क्या ही अच्छा होता यदि तुम यह मकान ले लेते। मुझे तुम्हारे प्रेम की तो आवश्यकता नहीं थी, और मैं इस प्रकार की बातों को पसन्द भी नहीं करती, परन्तु यूं ही मन बहला रहता। वे दिन भर दफ्तर में रहते हैं—प्रातःकाल से संध्या समय तक। तुम कभी-कभी मुझे कनखियों से देख लिया करते और मेरे होठों की सुर्खी चमक उठती। क्या ही अच्छा होता ! हाय यह जीवन कितना नीरस, कितना आनन्द-विहीन है !

"मैं कल तक आपको बता सकूँगा। नमस्ते।"

"नमस्ते !" दोनों स्त्रियों ने कहा।

रेतीले मैदान में एक गौर-वर्ण मजदूर लकड़ियां फाड़ रहा था। खट-खट, खटाखट। मुझे पास से निकलते देखकर रुक गया।

"सलाम, साहब।"

"सलाम ! कहां के रहने वाले हो ! कश्मीरी हो !"

"नहीं साहब, कुल्लू का गद्दी हूँ।"

गौर-वर्ण, पुष्ट, मांसल देह, बहुत मैला, निकर फटी, पुरानी कमीज, चौड़ी छाती, और हाथ में एक मजबूत कुल्हाड़ी।

"कुल्लू, कुल्लू ?"

"जी सरकार।"

"घर वाली है ?"

गद्दी ने हँसते हुए उत्तर दिया, "जी सरकार।" 'घर वाली' के नाम पर हिन्दुस्तानी का सिर गर्व से ऊँचा हो जाता है। क्या हुआ यदि वह दास है। उसकी भी तो एक दासी है।

गद्दी अपने सौभाग्य पर गर्वान्वित हुआ मुस्करा रहा था। उसके बड़े-बड़े मैले दांत लाल-लाल मसूड़ों में कृत्रिम दांतों जैसे जड़े हुए प्रतीत होते थे।

"बच्चे भी होंगे।"

"जी सरकार, एक लड़का है। नन्हा सा (हाथ से इशारा करके) इतना सा।"

"उन्हें भी साथ लाए हो ?"

गद्दी की भोली मुस्कान मानो किसी ने अचानक पांवों तले मसल डाली हो। उसने धीरे से सिर हिलाते हुए इन्कार कर दिया। फिर सहसा बोल उठा, " बाबू जी, कोई काम दीजिए, मैं लकड़ियां बड़ी अच्छी फाड़ता हूँ।"

"एक मन का क्या लेते हो ?"

"एक आना।"

"एक आना ? केवल एक आना ? चार घण्टे के काम का केवल एक आना ? आधे दिन की कमाई !"

"सरकार, लोग एक आना भी नहीं देना चाहते।"

"तुम कुल्लू कब लौटकर जाओगे ?"

लकड़ी फाड़नेवाला रेत के एक ढेर पर बैठ गया और हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। कदाचित् वह हुक्के के धुएं में कुल्लू की शस्यश्यामल घाटियों, सेव के बागों, हिमाच्छादित पर्वत मालाओं, काली स्लेट की छतों वाले गांवों तथा अपनी स्त्री व नन्हें बच्चे के चित्रों को देख [illegible]। मैं आगे

चढ़ गया। लकड़हारे ने उदास भाव से एवं निराश भरी वाणी में कहा, "साहब, कोई काम बताइये।"

संध्या समय में फिर अपने सराय रूपी होस्टल में वापिस पहुँच गया। कारावास की कोठरियों के समान छोटे-छोटे कमरों की लम्बी-लम्बी कतारें। तले हुए प्याज़ की गन्ध। बीच में बड़े से चौक में अस्तव्यस्त पड़े हुए बेंच। आठ-दस विद्यार्थियों के बीच में खड़ा हुआ राजहंस उच्चस्वर में कह रहा था, "हम क्रान्ति चाहते हैं, क्रान्ति, मौजुदा क्रान्ति, जनता की क्रान्ति, समाजवादी क्रान्ति—और फिर शुद्ध, शत प्रतिशत मार्कसी। हम एक नई संस्कृति, नई सभ्यता, नए आदर्शों के आधार पर एक नए मनुष्य का, एक नए मनुष्य-समाज का निर्माण चाहते हैं। हम......" बेचारा राजहंस !

किचन का नौकर मेरे पास से निकल गया। मैं चिल्लाया "ओ दीने ! आज क्या बना है ?"

"साग, दाल तथा काशीफल।"

सत्तानवें नम्बर कमरे में रहने वाला ब्राह्मण रामनाम की धोती पहने स्नानागार की ओर जा रहा था। मैंने अपने कमरे का द्वार खोला और सिर झुकाकर बैठ गया। राजहंस अभी तक अपनी बारीक आवाज में उसी तरह चिल्ला रहा था, "हम इस पूंजीवादी समाज के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे, इसे पीसकर रख देंगे, इसके परखचे...

भैयालाल ने कमरे में प्रवेश किया। उसने उदास स्वर में पूछा "क्या तुमने मकान ले लिया ? क्या अब तुम हमें छोड़कर चले जाओगे—अपने सब साथियों को ?"

मैंने उत्तर में कहा, "मेरे लिये यह सराय ही अच्छी है।"

: ४ :

दर्द-गुर्दा

क्रिस्चियन कराह रहा था दर्द-गुर्दे के कारण। उसके पेट और धड़ में भयानक पीड़ा की लहरें उठ रही थीं। ऐसा लगता था कि वह अधिक समय तक इन लहरों की टक्कर का मुकाबला न कर सकेगा। अगले दिन उसका ऑपरेशन होने वाला था। यह उसका दूसरा ऑपरेशन होगा। पहला ऑपरेशन सफल न हो सका था। उस ऑपरेशन में उसके दायें गुर्दा का काफ़ी हिस्सा काट दिया गया था, और वह पथरी-सी निकल आई थी। परन्तु पीड़ा उसी प्रकार बनी हुई थी और पेशाब घाव से रिसता था, मानो उसके प्राण प्रति-क्षण निकल रहे हों। वह बार-बार हस्पताल के लोहे के पलंग की दायें हाथ वाली पट्टी को पकड़कर जोर से भींचता, परन्तु उससे पीड़ा में कोई कमी न होती थी। "हे भगवान्!......हाय मां!!" वह बार-बार कहता। उसकी माता का देहान्त हो चुका था—वह भगवान् के पास पहुँच चुकी थी। और भगवान्.................."हे भगवान्! मेरी सुनले! मैं पीड़ा से मरा जा रहा हूँ। कल मेरा ऑपरेशन होगा—दूसरा ऑपरेशन। प्रभो! मुझे बचालो! मुझे जीवन-दान दे दो!! डाक्टर साहब कहते हैं कि मैं केवल एक गुर्दे के सहारे भी जी सकता हूँ। हे परमात्मा! मुझे इस तीव्र पी[illegible]व

कर दे ! हे भगवान् ! मेरे परमात्मा ! हाय अम्मा !!" वह बहुत देर तक इसी प्रकार कराहता रहा और बुड़बुड़ाता रहा।

उसकी काली भवों के नीचे दो बड़ी-बड़ी आँखें भयानक रूप से चमक रही थीं। परन्तु उसके चेहरे पर पीलापन न झलकता था—इसलिये कि उसके चेहरे का रंग बहुत काला था। यह काला रंग अब और भी काला हो गया था—फाउन्टेन पैन की स्याही की भाँति जो लिखते समय ताजा और ब्ल्यू-ब्लैक रंग की होती है, परन्तु सूखते-सूखते काले रंग की हो जाती है।

जॉय अपनी,सफेद टोपी को ठीक करती हुई उसके बिस्तर के निकट आई। वह अपने सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, मीठी वाणी और सेवा भाव के लिये सारे अस्पताल में विख्यात थी। यूं तो अन्य सारी नर्सों का रोगियों के प्रति व्यवहार प्रेमपूर्ण होता था, परन्तु जॉय की बात निराली थी। उसकी नीली आँखों में एक विचित्र प्रकार की विषाद छाया-सी छाई रहती थी जिसके कारण उनमें एक अलौकिक आकर्षण भरा हुआ था। उसके होठों की पतली, टेढ़ी-सी, क्षीण-सी मुस्कान ऐसी लगती मानो पहली रात के चांद का रुपहला किनारा हो। जॉय मानो सहानुभूति, दुःख, ममता और प्रेम के सम्मिश्रित भावों की साक्षात् मूर्ति हो। उसे देखकर मरने वाले रोगियों के लिये मरना सरल हो जाता था। ऐसा लगता था मानो वह मुस्कान सब कुछ समझती है, सब कुछ जानती है, सब कुछ अनुभव करती है, जैसे कि वह सारी सृष्टि के दुःख-दर्द का भार अपनी छोटी-सी कोमल मेहराब पर उठाये हुए है। क्रिस्चियन जब उसे देखता तो उसे ऐसा लगता मानो उसकी पीड़ा एकदम कम हो गई हो, मानो वह भयंकर झंझावात जो अभी-अभी उसके पेट और धड़ में उठ रहा था, शान्त होने लगा हो। जब तक वह .सकी छाती पर हाथ फेरती रहती अथवा उससे केवल बात ही करती रहती तब तक उसको बहुत आराम मिलता रहता—उसकी जलती आँखों में चैन-सा पड़ने लगता, और उसके साँस की गति में संतुलन

सा आने लगता। क्रिस्चियन को उस समय ऐसा लगता मानो जॉय की आँखों में मरियम की सी पवित्रता है, और उसके हाथों में ईसा की मसीहाई भरी हुई है। उसको यह भी अनुभव होता कि जॉय उसकी देख-भाल और सेवा सुश्रूषा में अन्य रोगियों की अपेक्षा अधिक प्रेम, परिश्रम और सावधानी से काम लेती है। इसलिये उसे अपने पास देखकर क्रिस्चियन को बहुत आराम मिलता।

आज क्रिस्चियन की पीड़ा और दिनों की अपेक्षा अधिक तीव्र, अधिक तीक्ष्ण, अधिक असह्य प्रतीत होती थी। जॉय भी अपेक्षाकृत आज अधिक शोकातुर प्रतीत होती थी। उसकी मुस्कान में विषाद की छाया अधिक गहरी थी और आँखें डबडबाई-सी हो रही थीं। वह एक कुर्सी खींचकर उसके पलंग के निकट बैठ गई और काँपती हुई आवाज में बोली, "आज शायद सुलाने वाली दवा का तुम पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।"

"हाँ..................आज बहुत पीड़ा है।" उसने रुकते-रुकते उत्तर दिया।

"कोई बात नहीं, घबराओ नहीं। मैं तुम्हें दवा की एक खूराक और पिलाती हूँ जिससे तुम आज की रात आराम से काट सकोगे। कल तुम्हारा आपरेशन होगा। आशा करती हूँ कि इस बार तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगे।"

"हाँ...हाँ...उसके बाद मैं बिल्कुल ठीक हो जाऊँगा।" क्रिस्चियन ने कहा। परन्तु इन शब्दों के पर्दे के पीछे गहरी निराशा झलक रही थी।

नर्स ने उसे सुलाने की दवा की एक खुराक और पिलाई और उसकी आँखों से उबलते हुए आंसुओं की धारा को रोक दिया।

क्रिस्चियन ने अपनी छाती की ओर संकेत करके कहा, "मेरा दम घुटा जा रहा है।" परन्तु उसकी बात पूरी होने से पहले ही जॉय ने उसकी छाती को सहलाना प्रारम्भ कर दिया था।

थोड़ी देर में, धीरे-धीरे उसकी आंखों में तन्द्रा छाने लगी। वह
ोचने लगा, जॉय कितनी अच्छी है। परमात्मा कितना दयालु है।
से अपनी माँ याद आई जो मर चुकी थी। अच्छा हुआ वह अब इस
ंसार में नहीं है। वह अपने प्यारे पुत्र को मृत्यु के मुख में इस प्रकार
ाते हुए कैसे देखती? क्रिश्चियन की आंखों से अश्रुधारा वह निकली।
स वार जॉय ने उसके आंसू नहीं पोंछे। उसे ध्यान आया कि वह इस
ाम्बे-चौड़े संसार में विल्कुल अकेला है। वेचारा एक निर्धन क्लर्क—
असहाय, अनाथ—एक हस्पताल में दम तोड़ रहा है। जब वह हस्प-
ताल में दाखिल हुआ था तो कुछ दिनों तक उसके कुछ मित्र, उसके
दफ्तर के कुछ साथी उसे देखने आए थे। एक वार उसके सैक्शन का
बड़ा बाबू भी उससे मिलने आया था और सद्भावना के रूप में कुछ
फल और फूलों का एक गुलदस्ता उसके लिये लाया था। परन्तु अब
तो वहुत दिनों से किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया था।
उसके कुछ सम्वन्धी भी थे। परन्तु वे सव जव्वलपुर में थे और
इतनी दूर से आने में रुपया वहुत लगता था, इसलिये वहां से कोई
व्यक्ति उसे देखने के लिये नहीं आ सकता था। और फिर यदि
उनमें से कोई आ भी जाता तो वह क्या करता? उसकी सारी छुट्टियां
—वैतनिक तथा अर्ध-वैतनिक—समाप्त हो चुकी थीं। अब वह विना
वेतन वाली छुट्टियों पर था। दफ्तर का कार्य पूर्ववत् चल रहा था—
और यह जानकर उसे वहुत दुःख हुआ। वह समझता था कि उसका
उस दफ्तर में होना अत्यन्त आवश्यक था। परन्तु जब से उसने विना
वेतन की छुट्टियां ली थीं, तव से उसे विश्वास होगया था कि वह एक
व्यर्थ-सा व्यक्ति था।

जॉय कितनी दयालु है! परन्तु वह नया व्यक्ति जो उसके स्थान
पर कार्य कर रहा है, सोचता होगा कि भगवान् करे क्रिश्चियन मर
जाए और वह उसका पद सम्भाल ले। आखिर उस वेचारे को अपना पेट
पालना था! परन्तु यह उसे क्या पता होगा कि पेट का धन्धा करते-करते

कभी-कभी पेट में ऐसी भयंकर पीड़ा की लहरें उठती हैं...। परन्तु तीस रुपये मासिक में ही उसे ऐसा कौन-सा अलौकिक आनन्द प्राप्त था ? सवेरे से सांझ तक वह मेज पर सिर झुकाए हुए लिखा-पढ़ी करता रहता और अधिकारियों की झाड़ सुनता और झाड़ सुनकर और भी अधिक व्यस्तता, सावधानी और ध्यान से अपने काम में जुट जाता था।...हाय ! यह नारकीय पीड़ा—मानो नरक उसे धीरे-धीरे निगल रहा हो। पीली फ्राक पहने हुए वह चंचल लड़की साइकिल पर दौड़ लगाती हुई उसे दफ्तर आते-जाते प्रतिदिन मिलती थी। लूडलो कैसल के निकट यूक्लिप्टिस की ऊंची-ऊंची फुंगें नीले आकाश की पृष्ठभूमि के सामने लहराती थीं। सफेद कबूतरों की डार आकाश में उड़ती चली जा रही थी। यदि उसके पास कैमरा होता ! एक बार उसने अपने वेतन में से तीन रुपये बचाए भी थे, परन्तु फिर उसे खांसी की दवा खरीदनी पड़ गई थी—लाल लाल दवा। कई दवाएं देखने में कितनी सुन्दर लगती हैं ! परन्तु कई दवाएं उसके चेहरे की भांति भौंडी होती हैं।—उसके ही भांति ! परन्तु उसकी आकृति तो इतनी बुरी न थी। बहुत दिनों से उसने शीशा भी न देखा था। उसके मानसिक नेत्रों के सामने फिर वही पीला फ्राक घूमने लगा। कितनी सुन्दर सलोनी लड़की थी वह ! सुन्दर और सलोनी ! परन्तु मिस जॉय सब कंवारी लड़कियों में सब से अधिक सुन्दर है। सुन्दर भी और सहानुभूति के भावों से परिपूर्ण भी ! हाय यह पीड़ा ! मानो तीव्र लहरें तट से टकरा रही हों ! उन लहरों के प्रत्येक थपेड़े से उसका शरीर कांपने लगता था, उसके शरीर की पोरी-पोरी दुःखने लगती थी। कल उसका ऑपरेशन होगा और आज मिस जॉय उसकी छाती सहला रही है। सब रोगी सो रहे हैं। कौन जाने यह उसकी अन्तिम रात हो ! उसकी आंखों से फिर आंसू बहने लगे। परन्तु वह तो अभी नवयुवक था और जीवित रहना चाहता था। यद्यपि उसके पास कुछ भी न था। परन्तु फिर भी वह इस दुनिया में रहना चाहता था। मिस जॉय अब

गई होगी। यह छोटी-छोटी पतली-पतली उंगलियां ! वेचारी मिस जॉय सवेरे से सांझ तक काम करती रहती है परन्तु उसके माथे पर कभी त्यौरियां नहीं पड़तीं। इस कोमल दुर्बल शरीर में इतनी शक्ति कहां से आई है—इतना प्रकाश, इतना तेज, इतनी स्फूर्ति ! क्रिश्चियन के पास एक वाइविल थी, उसका सर्वस्व, उसकी मां को अन्तिम निशानी। वह उसे कवर में तो ले नहीं जायेगा। जब मिस जॉय उसकी छाती सहला कर उठेगी तो वह अपना वाइविल उसे सौंप देगा। जॉय की आंखों से प्रगट होता है कि वह दूसरों का कष्ट अनुभव करती है। आशा है, वह वाइविल स्वीकार कर लेगी। कल ऑपरेशन होगा। क्या मरने से पहले यह हस्पताल वाले मुझे लूडलो कैसल नहीं दिखा सकते ? वह सड़क का मोड़, वह पीले फ्रॉक वाली लड़की, वे सफेद कबूतर, वह हवा में झूमती हुई युक्लिप्टिस की शाखायें······जॉय के साथ घूमते हुए···। लैम्प का प्रकाश मद्धम क्यों हो रहा है ? यह क्या हो रहा है ? प्रकाश और अन्धकार···झिलमिल···झिलमिल···।

क्रिश्चियन सो रहा था और लम्बे-लम्बे सांस ले रहा था। जॉय धीरे-धीरे उसकी छाती सहलाती रही। लैम्प के प्रकाश में क्रिश्चियन का चेहरा एक काले परदे की भांति दिखाई दे रहा था, जैसा कि कार्निवाल में जोकर पहनते हैं। कार्निवाल···कार्निवाल ओह। उसे कार्निवाल देखे हुए कितना समय हो गया। रोगियों की सेवा-सुश्रूषा से उसे इतनी फुरसत कहां मिल सकती थी कि वह कार्निवाल देख सके। कार्निवाल के आनन्द, सहेलियों का हास्य-विनोद जिनमें यौवन का आनन्द झलकता था। क्रिश्चियन की आंखें वन्द थीं और दो काले गड्ढों के अन्दर धँसी हुई थीं। आज से तीन वर्ष पहले इसी विस्तर पर, इसी तरह पड़े-पड़े उसके प्रेमी जावेद ने दर्द-गुर्दा से अपने प्राण छोड़े थे। उसका ऑपरेशन भी दोबारा हुआ था। उन दिनों वह नई-नई हस्पताल में आई थी, और हिन्दुस्तानियों के भूरे-भूरे काले-काले शरीरों को हाथ लगाने से भी झिझकती थी। हिन्दुस्तानियों से

उसे एक प्रकार की घृणा थी जिसे दबाने के लिये वह बहुत प्रयत
करती थी। परन्तु जावेद ने उस घृणा को प्रेम में बदल दिया था
जावेद—लम्बा क़द, चौड़ा माथा, मुलायम, बारीक बाल जो सदा उलझे
रहते थे। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं जिनमें एक प्रकार की मानसिक
उलझन सदा झलकती रहती थी। वह उसके बालों में तेल की मालिश
किया करती थी। जब मालिश करके वह उसके बालों को कंघे से
पीछे की ओर संवारती थी तो उसका माथा कितना चौड़ा लगने लगता
था। चमेली के तेल की भीनी-भीनी सुगन्ध उसके नथनों में रमने लगती
थी। अब भी उसे ऐसा लगने लगा, मानो जावेद के बालों के सा
उसकी ंगुलियां खेल रही हैं।

आह! परन्तु ये तो क्रिस्चियन के छाती के बाल हैं—कठोर औ
खुर्दरे! बेचारा क्रिस्चियन! कल इस बेचारे का दूसरा ऑपरेशन
होगा। कौन जाने...। जॉय से क्रिस्चियन का दुःख न देखा जाता था
उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो वह अपने प्रेमी को दोबारा मरते हु
देख रही है। उसकी नीली आंखें डबडबा आईं। एक समय था ज
कि उसे हिन्दुस्तानियों से घृणा थी। परन्तु जावेद ने उसके मन
परिवर्तन कर दिया था। वह अकेला पड़ा कराहता रहता था। य
पीड़ा कम हो जाती तो वह पढ़ने लगता। परन्तु वह धार्मिक पुस्त
नहीं पढ़ता था। इस प्रकार की पुस्तकों से वह घृणा करता था। जॉ
को याद आया कि किस प्रकार एक बार जब उसने जावेद को पढ़ने के
लिये बाइबिल दिया तो उसने उसको चूम कर जॉय को वापिस क
दिया था। उसने उस समय कहा था "मैं धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें नहीं
पढ़ा करता। परन्तु मैंने तुम्हारी खातिर इस बाइबिल को चूम लिया
है।" वह इसी प्रकार की विचित्र-सी बातें किया करता। और कि
कभी एकदम चुप हो जाता और बहुत देर तक मौन-निस्तब्ध
लेटा रहता। उसके मित्रों की संख्या बहुत अधिक थी जो
मिलने के लिये आते रहते थे। हस्पताल के नियमों

उन्हें जावेद के पास बैठने की अनुज्ञा दे देती थी। न देती तो करती भी क्या ? उससे आज्ञा मांगते समय जावेद के स्वर में नम्रता और आत्मसम्मान, दोनों का सम्मिश्रण कुछ इस ढंग का होता था कि वह ना नहीं कर सकती थी। जावेद अत्यन्त तीव्र पीड़ा के समय भी न चिल्लाता था—शायद इसी बात से जॉय पहले-पहल उसकी ओर आकर्षित हुई थी। वह पहली निगाह उसे कभी न भूलती थी जब कि वह किसी आवश्यक कार्य से उसके पलंग के पास से लपकी हुई जा रही थी और उसकी दृष्टि सहसा जावेद पर पड़ी जो अपने होठों को बलपूर्वक भींचे हुए था। परन्तु उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में से वह भयानक पीड़ा झांक रही थी जो क्षण प्रतिक्षण उसके विकृत गुर्दे से प्रारम्भ होकर उसके शरीर के रोम-रोम में फैल जाती थी। उसे ऐसा लगा मानो जावेद एक निहत्था प्राणी है जो अकेला समुद्र के अन्दर किसी समुद्री सहस्रपाया जन्तु से युद्ध कर रहा है। सहस्रपाया की हिलती हुई बाहें उसके शरीर को मानो अपनी लपेट में जकड़ती जा रही थीं। परन्तु वह बड़े पराक्रम और वीरता के साथ युद्ध कर रहा था। मानो उसकी पीठ दीवार के साथ लगी हुई थी और सामने बन्दूकों की बाढ़, और वह मृत्यु को सामने देखकर उसका उपहास कर रहा था। जब जॉय ने उससे पूछा कि तुम्हें क्या कष्ट है, तो उसने बड़े शान्त भाव और नम्रता के साथ केवल 'दर्द-गुर्दा' कहा और आंखें बन्द कर लीं। पीड़ा के साथ यह युद्ध उसका अपना निजी मामला था। वह अपनी पीड़ा को जॉय की दया का पात्र नहीं बनाना चाहता था। जॉय का अनुभव तो यह था कि हिन्दुस्तानी जब बीमार पड़ते हैं तो बहुत चिल्लाते हैं। दुःख कम होता है परन्तु उसका प्रदर्शन बहुत अधिक होता है। हर समय "मिस साहब" की रट लगी रहती है, मानो "मिस साहब" को दिन भर में केवल उस एक ही रोगी को देखना हो। रोगी चिड़चिड़े तो होते ही हैं परन्तु हिन्दुस्तानी तो साहस, धैर्य और सहन शक्ति को हाथ से बिल्कुल खो देते हैं। सारे

तो नहीं किन्तु अधिकांश हिन्दुस्तानी इसी प्रवृत्ति के होते हैं। जावेद उसने पहला हिन्दुस्तानी देखा था जो पीड़ा से तड़पता हुआ भी मुख से आह न निकालता था। वह बहुधा सुलाने वाली दवा भी न पीता था।......परन्तु क्रिश्चियन? यह बेचारा तो दूध पीते बच्चों की भांति बिलबिलाता रहता है। बेचारा कितना दुर्बल हो गया है! क्या यह कल के आपरेशन से बच सकेगा? परन्तु डा० वाट......डा० वाट का ध्यान आते ही वह कांप उठी—ठिगना क़द, लाल-लाल मूछें, गठा हुआ शरीर, बड़े-बड़े लम्बे-लम्बे वलिष्ट हाथ। आकृति से भी और स्वभाव से भी वह सर्जन नहीं वरन् एक क़साई दिखाई पड़ता था। जब वह हस्पताल में पहले-पहल आई तो डा० वाट ने उससे कहा था कि वह हस्पताल की सारी कुंवारी नर्सों में सब से अधिक सुन्दर है। यह सुनकर उसके शरीर में आग-सी लग गई थी, और उसके आग्नेय नेत्रों को देखकर डा० वाट ने खिसियानी हँसी हँसकर उससे कहा था, "जाओ नन्हीं लड़की! यह तो मजाक़ था, जाकर वार्ड में काम करो।"

वार्ड में पहले-पहल उसे हिन्दुस्तानियों के शरीरों से भी एक विचित्र प्रकार की दुर्गन्ध आया करती थी जिसे फ़िनाइल और लाइसोल भी दूर करने में असमर्थ थे। जावेद को फ़िनाइल की गन्ध बहुत बुरी लगती थी। जब जॉय को इस बात का पता तो उसने भंगी को आज्ञा दी थी कि वह जावेद के पलंग के आस-पास फिनाइल या लाइसोल न छिड़का करे। यह स्वयं प्रतिदिन पोटाशियम परमैंगनेट का लाल पानी वहां छिड़क दिया करती थी। और उस समय जावेद मुस्कराकर उर्दू का एक शेर पढ़ा करता था। वह उर्दू न समझती थी—बल्कि वह हिन्दुस्तानी भाषा को एक असभ्य भाषा मानती थी—फिर भी उस शेर को सुनकर उसके गालों पर लाली दौड़ जाती थी। जावेद छोटी-छोटी बातों से उसे प्र[illegible]िया करता था। आज वे छोटी-छोटी बातें भाले बनाकर

में चुभी जा रही थीं। आह! क्यों न वह स्वयं भी दर्द-गुर्दा से मर गई। उसे याद आया कि जब जावेद का पहला आपरेशन हुआ तो वह कितना प्रसन्न चित्त दिखाई पड़ता था। उस समय किसे यह ध्यान आ सकता था कि वह अपनी विषाद पूर्ण मुस्कान लेकर सदा के लिये संसार से चला जायगा। उसे मृत्यु हस्पताल में ही क्यों लाई? क्या वह किसी दूसरे स्थान पर जाकर न मर सकता था? वह यहां आया ही क्यों? और यदि वह आ ही गया था तो क्यों उसने अपने समाप्त होते हुए जीवन की प्रेम धूलि उसकी आंखों में झोंक दी थी? जॉय को अपनी आंखें जलती हुई मालूम हुईं। सहसा उसके नेत्रों से अश्रुधारा फूट निकली। यह कैसा न्याय था, यह कौन-सा ईश्वरीय नियम था! वह तो हस्पताल में अपना पेट पालने आई थी न कि अपनी आत्मा में आग लगाने!

जॉय ने अपने आंसू पोंछ डाले। वह अपना शोक विस्मृत कर देगी। भविष्य में अधिक तन्मयता के साथ वह रोगियों की सेवा किया करेगी। उसे अपने कार्य से लगाव होना चाहिये। लगाव! परन्तु लगाव तो उसे जावेद से था। जावेद ने उससे एक बार कहा था, "जानती हो, जॉय और जावेद, दोनों नाम एक ही अक्षर से प्रारम्भ होते हैं।" यह सुनकर वह कितनी प्रसन्न हुई थी। घर जाकर डायरी में उसने कई बार 'जॉय और जावेद' लिखा था—'जॉय और जावेद!'

पहले आपरेशन की रात वह सहसा शोकातुर हो गया था—निराशा उसकी आंखों से झलक रही थी। दिन भर उसके मित्र उसको सान्त्वना देते रहे थे, परन्तु वह हर बार एक गहरे विश्वास के साथ कह उठता—"नहीं भाई! मैं इस आपरेशन से नहीं बच सकता।" और जब सब मित्र चले ते तो निराशा की कालिमा उसके चेहरे पर और भी अधिक गहरी हो गई। उसने उस रोज जॉय को ऐसी दृष्टि से देखा था मानो सदा के लिये उससे विदा ले रहा हो। फिर जॉय ने बारह

वजे के चक्कर के समय भी उसे जागते पाया था। और उसने जावेद को अत्यन्त भावपूर्ण ढंग से कहा था, "मैंने अभी बाहर एक मैडिकल स्टूडैन्ट से तुम्हारे नाम का अर्थ पूछा था तो उसने मुझे बतलाया कि जावेद का अर्थ है 'सदा रहने वाला।' तुम जो सदा रहने वाले हो, कैसे मर सकते हो ?" यह सुनकर उसकी आंखें चमक उठीं। शायद उसे जॉय की बात का विश्वास हो गया था और अगले दिन उसने हँसी-खुशी आपरेशन करा लिया था।

फिर जॉय को याद आया कि उसने लगातार तीन दिन तक जावेद के शरीर पर मालिश नहीं की थी—पूरे तीन दिन तक। जावेद को उसके हाथ से मालिश कराना कितना अच्छा लगता था! परन्तु दो दिन से वह उसके पलंग के पास भी न फटकी थी और मुस्कराकर उसके निकट से होकर इधर-उधर चली जाती थी। जावेद चुपचाप इस बात को सहन करता रहा और टामस हार्डी का एक उपन्यास पढ़ता रहा। उसने जॉय की ओर ध्यान भी न दिया। परन्तु तीसरे दिन जब वह उसकी मालिश करने बैठी तो जावेद ने कापते हुए स्वर में उससे कहा था "दो दिन से तुम ने मेरी मालिश नहीं की, जॉय, !" और जॉय क्षण भर के लिये उसकी आंखों की अत्यन्त गहराइयों में उसके मन के असीम एकाकीपन में खो गई थी। फिर जब जॉय ने उत्तर दिया, "मुझे दो दिन जुकाम रहा। मैंने तुम्हारी मालिश इसलिये नहीं की कि कहीं तुम्हारे पास बैठने से तुम्हें भी जुकाम न हो जाए!" तो जावेद की आंखों में प्रसन्नता की कितनी बड़ी लहर दौड़ गई थी! हाय वे सुन्दर अलौकिक क्षण! उस समय जावेद के बिस्तर पर बैठे हुए जॉय को ऐसा लगा था मानो वह सात द्वीपों की रानी है और घायल शाह आर्थर को अपनी नौका में बिठाए किसी अज्ञात-नामा झील के पार अपने राज्य में ले जा रही परन्तु सृष्टि के निर्दय देवताओं को जॉय का वह स्वर्गीय सुख न लगा। जावेद का पहला आपरेशन सफल न हुआ। दर्द

बना रहा। यद्यपि पथरी निकल गई थी फिर भी पीड़ा की
ता के कारण ऐसा लगता था कि आपरेशन दूसरी वार करना
गा। डा० वाट ने बहुत सोच-विचार के पश्चात् दूसरा आपरेशन
ने का निश्चय किया था।

जॉय को दूसरे आपरेशन के वे अन्धकारमय दिन याद आए जब
ह जावेद के मित्रों ने भी उसके पास आना-जाना कम कर दिया था।
सकी आधे वेतन वाली छुट्टियां भी समाप्त हो गई थीं। उसकी दो
ड़ी-बड़ी आंखें दो काले गड्ढों में धँसती जा रही थीं और गुर्दे से हर
समय पेशाब रिस-रिस कर बहता रहता था। उन दिनों जावेद की
मौन-साधना और भी गहरी हो गई थी, और उसकी वेदना भी
विकट। उसकी आंखें केवल उस समय चमकतीं जिस समय जॉय उसके
सामने आ जाती, अथवा जब जॉय प्रातःकाल के समय गार्डिना
फूलों का एक गुलदस्ता उसे भेजती। गार्डिना के फूल जॉय को बहुत
प्यारे लगते थे। उनकी सुगन्धि सारे वार्ड में फैल जाती थी। वह
बहुधा जॉय से कहता, गार्डिना के फूल देखकर उसे लारेंस बाग़ का
एक कोना याद आ जाता था, जहाँ गार्डिना के फूलों की एक बेल
सड़क के ऊपर झुकी हुई थी और लौकाट और पाम के पेड़ों के झुंड
के ऊपर चाँद चमकता था। एक दिन उसने जॉय से धीरे से कहा था,
"जब मैं अच्छा हो जाऊँगा तो हम दोनों वहाँ जाया करेंगे। कितने
अच्छे हैं ये गार्डिना के फूल!" जॉय ने अपने आंसू पोंछ डाले। उसने
निश्चय किया कि वह अब कभी नहीं रोएगी। परन्तु फिर उसे वह दिन
याद आगया जब जावेद के मरने के कुछ दिनों के पश्चात् वह लारेंस
बाग़ गई थी— उसी स्थान पर जहाँ गार्डिना के फूलों की बेल थी और
लौकाट व पाम के पेड़ों के बीच में ऊपर चाँद चमक रहा था। उसकी
छाती सहसा सैंकड़ों सिसकियों से भर गई थी।

दूसरे आपरेशन से पाँच दिन पहले जॉय को कलकत्ते जाने की
आज्ञा मिल गई थी। डाक्टर वाट ने कहा था कि बदली की आज्ञा प

उसे तुरन्त पालन करना पड़ेगा । उसे तीन दिन से ज्यादा ठहरने का समय नहीं मिल सका । उसे आज्ञा दी गई कि वह तुरन्त कलकत्ते के लिए प्रस्थान कर दे । निर्दयी डाक्टर वाट जॉय को कसाई से कम न लगा । कमरे से जाते-जाते उसने जॉय से व्यंग्य पूर्वक कहा, "मुझे खेद है कि उस हिन्दुस्तानी छोकरे की देख-भाल का कार्य तुम्हें किसी और नर्स को सौंपना पड़ेगा ।" जॉय कलकत्ते जाने से इन्कार कैसे कर सकती थी ? परन्तु वह इस समय नहीं जाना चाहती थी । जावेद जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा था । और वह शायद अपने प्राणों से भी अधिक जॉय को चाहता था । परन्तु यदि वह कलकत्ते चली गई तो यह बात निश्चित थी कि जावेद कभी न बच सकेगा । यदि जावेद ने यह बात सुन भी ली तो भी अवश्य मर जायगा । उसने निश्चय किया कि वह इस सूचना को अपने मन में छिपा लेगी । एक बार उस ने डाक्टर वाट से प्रार्थना भी की कि वह उसकी बदली को थोड़े दिनों के लिए स्थगित करवा दे । उसने वचन दिया कि जावेद के अच्छा हो जाने के पश्चात् वह तुरन्त कलकत्ता चली जावेगी । वह जावेद से प्रेम करती थी । और इस बात को डाक्टर वाट के सामने स्वीकार करने में उसे संकोच अथवा लज्जा का अनुभव नहीं हुआ था । डाक्टर वाट ने उससे कहा था "तुम्हारी बदली किसी प्रकार भी स्थगित नहीं हो सकती । जैसे भी हो तुम्हें तुरन्त कलकत्ता जाना पड़ेगा । हां एक रास्ता है..." और यह कहकर उसने जॉय की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा था और जाय उसके कमरे से इस तरह कांपती हुई भाग आई थी मानो कोई राक्षस उसका पीछा कर रहा हो । जॉय हस्पताल की सब कुंवारियों में सबसे अधिक सुन्दर है ।" परन्तु वह क्या करे ! ......वह त्यागपत्र देकर वहां रह सकती थी । परन्तु उसे वहां हस्पताल में कौन घुसने देगा ? और फिर वह कसाई......चार दिन के पश्चात् जावेद का आपरेशन था ......जावेद, उसका प्रियतम जो जीवन और मृत्यु के बीच में झूल रहा था । इस दुविधा में दो दिन बीत गए

वह दिन भर रोगियों की सेवा में व्यस्त रहती। सवेरे व शाम परमात्मा से प्रार्थना करती कि वह उसकी कठिनाई को दूर कर दे। परन्तु उसकी कठिनाई दूर होती दिखाई न देती थी। तीसरे दिन डाक्टर वाट ने उसे धमकी दी और कहा कि वह यदि उसी दिन कलकत्ता न जायगी तो उसे नौकरी से तुरन्त हटा दिया जायगा, और हस्पताल में घुसने भी न दिया जायगा। अगले दिन जावेद का आपरेशन था। वह क्या करे? सहसा उसने अपने मन में एक निश्चय कर लिया। आज भी जबकि उस घटना को तीन वर्ष बीत चुके थे, जाय यह निश्चय न कर सकी थी कि उसका वह निश्चय ठीक था अथवा नहीं... चाहे कुछ हो, उस निश्चय के पश्चात् परमात्मा ने उसकी कठिनाई को दूर कर दिया था। उसकी बदली स्थगित हो गई थी। जॉय को, जो हस्पताल की कुंवारियों में सबसे सुन्दर थी, अब केवल इतना याद था कि अगले दिन जब वह अपने होंठ भींचे, धड़कते हुए हृदय के साथ गार्डिना के फूलों का गुच्छा अपने कांपते हुए हाथों में लेकर जावेद के पास पहुंची, तो उसने देखा कि जावेद मरा पड़ा है......। पौ फट रही थी, रोशनदान के रास्ते से सूरज का सोना वह बहकर अन्दर आरहा था। पूर्वी आकाश में किरणों के मानो खेत लहरा रहे थे। परन्तु जावेद प्रकृति के सारे सौंदर्य से उदासीन होकर किसी दूसरी दुनिया में चला गया था। जॉय ने गार्डिना के फूल अपनी अंगुलियों में मसल डाले थे। वह जावेद की छाती पर झुक गई थी और अपने दोनों हाथों से अपना मुख छिपाकर सिसकियां लेने लगी थी—तीव्र, कटु, बोझल, असह्य, लम्बी-लम्बी सिसकियां।

सवेरे जब क्रिस्चियन जागा तो उसने देखा कि मिस जॉय उसकी छाती पर अपना मुख अपने हाथों से ढांपे सो रही है। उसने उसे धीरे से झंझोड़ा। मिस साहब—मिस साहब—फिर वह हल्की-सी चीख मारकर परे हट गया। कुंवारी जॉय की आंखें सदा के लिए बन्द हो चुकी थीं।

गरजन की एक शाम

पृथिवी और स्वर्ग की बहस बहुत पुरानी है। उन लेखकों की सेवा में, जिनकी दृष्टि सदा आकाश पर रहती है, मैं केवल यह कहने की धृष्टता करता हूँ कि पृथिवी भी एक नक्षत्र है।

—मैक्सिम गोर्की

बहुत समय से तुम्हें पत्र नहीं लिख सका हूँ ; शायद ऊषा के धोखों और झूठे वचनों को भूलने का प्रयास कर रहा था, या फिर जगदीश के मार्मिक प्रेम का अन्तिम दृश्य देखने में व्यस्त था। वस्तुतः मैं ठीक कारण शायद स्वयं नहीं जानता। तुम शायद पूछो कि क्या जगदीश जैसा व्यक्ति भी प्रेम कर सकता है?—मोटा-सा आदमी (बहुत मोटा तो नहीं) जिसके होठों पर सदा मृदु मुस्कान खेलती रहती है, शिकार का शौक़ीन, ब्रिज का और साथ ही बीयर का पुजारी ! क्या ऐसा व्यक्ति भी प्रेम-लीला के कष्ट को सहन कर सकता है? तो मेरी जान ! इसका उत्तर यह है कि...

परन्तु नहीं, यह अधिक आवश्यक है कि मैं पहले तुम्हें उस स्थान के सम्बन्ध में बतलाऊँ जहां हम पिछले डेढ़ महीने से—पड़े हुए हैं। किसी विशेष वातावरण का प्रभाव हमारे साधारण ... नहीं पड़ता, वरन् हमारे जीवन का प्रत्येक पहलू उससे

तोदों के गिरने से एक भयंकर और कर्णभेदी आवाज़ पैदा होती है जो दूर, बहुत दूर तक फैलती हुई प्रतीत होती है। फिर थोड़ी देर के लिए निस्तब्धता छा जाती है—पूर्ण निस्तब्धता, जो उन भयानक आवाज़ों की अपेक्षा अधिक भयानक प्रतीत होती है। शिकारी बेचारा नहीं लौटा। वह अब कभी नहीं लौटेगा। शिकार करते-करते शिकारी स्वयं शिकार बन गया। उसकी हड्डियां नई बरफ़ के नीचे दब गई हैं और भेड़िये उन पर हर्ष से नाच रहे हैं।

परन्तु यह सब सुनकर तुम न घबराओ। प्यारे मित्र! हम अभी तक जीवित हैं—खाते-पीते, खेलते-कूदते फिरते हैं और एक दर्जन के लगभग रीछों, रौन्सों और भेड़ियों को गोली का निशाना बना चुके हैं।

जिस स्थान पर हमारा कैम्प है उससे लगभग डेढ़-पौने दो मील नीचे, पश्चिम की ओर, गरजन का सुन्दर, रम्य स्थान है। इससे अधिक सुन्दर स्थान मैंने आज तक कहीं नहीं देखा। यहां से उसकी दूरी यद्यपि दो मील से भी कम है, परन्तु कितना संकटमय मार्ग है वहाँ का! मार्ग में कई स्थलों पर ऐसी फिसलन है कि यदि चलने वाले का पांव तनिक भी डगमगा जाय और उसका संतुलन बिगड़ जाय तो बस बेचारा यात्री क्षणभर में ही सैंकड़ों, हज़ारों गज़ नीचे, बरफ़ से भरे हुए खड्डे में जा गिरता है और उसका निशान तक नहीं मिलता। अब तो हम इस मार्ग से कुछ-कुछ परिचित-से हो गए हैं। परन्तु फिर भी, चूंकि हर समय बरफ़ गिरती और वर्षा होती रहती है, इसलिए प्रतिदिन नया मार्ग बनाना पड़ता है। पूरे ध्यान और साहस से चलते-चलते भी यदि कभी सहसा दृष्टि नीचे की ओर जा पड़े तो उन अथाह गहराइयों को देखकर सारे शरीर में कँपकँपी-सी छा जाती है।

गरजन के निकट पांच झीलें हैं। बड़ी झील को नन्दनसर कहते हैं। यह कोई ढाई-तीन मील लम्बी-चौड़ी हम [illegible]। वर्ष के दस महीनों में यह बरफ़ से बनी रहती है, परन्तु जिस समय हम वहाँ पहुँचे उस समय वह नीले जल की एक थाली बनी हुई थी। ये पांच झीलें संसार

की सबसे ऊंची झीलों में से होंगी। ये उस युग का स्मरण कराती हैं जब सारी पृथ्वी के ऊपर पानी ही पानी था। फिर जब हिमालय धीरे धीरे ऊपर उठ आया तो ये झीलें पहाड़ों के बीच में गड्ढों की भांति बनी रह गईं।

गरजन में न होटल हैं न शिकारे, न यहां यात्रियों के झुण्ड आते हैं और न मोटरें यहाँ पहुँच सकती हैं। यहाँ का मार्ग, जैसा कि मैं बता चुका हूँ, अत्यन्त बीहड़, संकटमय और भयानक है। यह मार्ग केवल ३-४ महीने खुलता है। उन दिनों यहां के कष्ट-सहिष्णु, बलिष्ठ गड़रिये अपने भेड़ों के गल्ले चराने ले आते हैं। परन्तु अगस्त के पहले सप्ताह में ही फिर नीचे की आबादियों में चले आते हैं। कभी-कभार यहां कोई सैर का शौकीन या शिकार का शौकीन भी आ निकलता है, या कोई एकान्त-वास चाहने वाला। फिर वह शायद ही लौट पाता है। उसका अन्त या तो यहीं-कहीं बरफ के तोदों में होता है और या भेड़ियों के पेट में। इस दृष्टि से गरजन बहुत बदनाम है। गड़रिये तो गरजन देवता की पूजा करते हैं जिसका इस पहाड़ की चोटी पर वास है, जहां हमारा कैम्प लगा हुआ है। गरजन के देवता को आज तक किसी ने नहीं देखा। परन्तु कहा जाता है कि उसे परदेसियों और यात्रियों से बहुत घृणा है। गड़रिये जानते हैं कि गरजन देवता जिस पर कुपित होते हैं उसको मृत्यु का दण्ड देते हैं और जिस पर प्रसन्न होते हैं उसकी बकरियों के थनों में दूध अधिक कर देते हैं और उसकी भेड़ों को अत्यन्त नरम, मुलायम रेशम से ढक देते हैं।

गरजन की एक सुहावनी शाम की बात है, मैं, जगदीश और रेवा (वह एक पहाड़ी शिकारी था जिसे हम तराई के प्रदेश से अपने साथ लाए थे।) शिकार खेलकर वापिस कैम्प की ओर जा रहे थे। रास्ते में नन्दन-सर के किनारे बैठकर हम सुस्ताने लगे। उस समय सूर्य अस्ता-चल के पीछे जाने वाला था। वायु इतनी ठण्डी थी कि हर सांस के साथ मुंह के अन्दर बरफ़ के टुकड़े जाते हुए प्रतीत होते थे।

हमें वहां बैठे कुछ क्षण ही हुए होंगे कि सहसा मेघ-गर्जन हुआ। यहां का मौसम कितना क्षणिक होता है! पल में प्रलयंकारी वर्षा और पल में आकाश शुभ्र, निर्मल और धूप छाई हुई! रेवा ने ध्यानपूर्वक इन बादलों की ओर देखा जो गरजन की चोटी के चारों ओर एकत्रित हो रहे थे, और अपने नथुने फैलाकर उत्तरी वायु को सूंघकर बेचैनी से बोला, "तुरन्त चलो भारी झक्कड़ आ रहा है।"

हम एकदम खड़े हुए और चल पड़े। अभी यद्यपि धूप चमक रही थी, परन्तु पहाड़ों और घाटियों के कई भिन्न-भिन्न स्थलों पर श्वेत मेघ अपनी छाया डाल रहे थे। हवा में ठण्डक प्रतिपल बढ़ती जाती थी, और हमें तो ऊपर, बहुत ऊँचे, कैम्प तक पहुँचना था। हम तीव्र गति से चुपचाप, ऊपर चढ़ते चले जा रहे थे। गरजन की चोटी पर से बादल नीचे की ओर मानो फिसल-फिसल कर पड़ रहे थे। अब एक हल्का-सा झक्कड़ चलने लगा था और कहीं-कहीं बहुत सूक्ष्म-सी धुन्ध तैरती हुई हमारे मार्ग में आने लगी थी। हमने अपनी गति और भी तीव्र कर दी। कोई पौन घण्टे तक हम इसी तरह तेजी से चलते रहे। फिर ी झंझावात ने हमें आ ही घेरा। पहले तो धीमी-धीमी वर्षा आई, फिर बर्फ गिरने लगी। रेवा सबसे आगे था, जगदीश बीच में और मैं पीछे। हम तीनों की कमर में एक ही रस्सी बंधी हुई थी। रेवा हमारा मार्ग-दर्शक था। पन्द्रह बीस मिनट तक हम और चलते रहे। सहसा मेरी कमर में झटका लगा—एक बहुत तेज झटका। यदि मैं संयोग से सहसा सम्भल न जाता और मेरे पास बर्छा न होता तो मैं अपना संतुलन न रख सकता। अब मैं बर्छे के सहारे खड़ा जोर लगा रहा था, क्योंकि बाईं ओर झुका हुआ था।

चारों ओर गहन धुन्ध छा गई थी।

ऊपर से आवाज़ आई, "सम्हल जाओ, सम्हल जाओ।"

मैंने चिल्लाकर पूछा, "क्या हुआ?"

जगदीश की आवाज़ आई, "मैं बरफ़ पर गिर गया हूं। हाय! कितनी पीड़ा हो रही है। उठा नहीं जाता, पांव में चोट आगई है।"

"उठो, उठो, साहस से काम लो।" मैंने रस्सी पर ज़ोर लगाते-हुए कहा।

झंझावात ने हमें अब पूरी तरह घेर लिया था। धुन्ध सफ़ेद थी, परन्तु काली से भी बुरी। हाथ को हाथ सुझाई नहीं देता था। रेवा के और मेरे बीच में जगदीश कहीं बर्फ़ पर गिरा पड़ा था, परन्तु हम उसे उठा नहीं सकते थे।

रेवा की आवाज़ आई, "सन्तुलन बनाए रखो। रस्सी को दाईं ओर झटका दो। लो, एक, एक...दो...तीन!"

मैंने बड़ा बल लगाया, परन्तु जगदीश न उठ सका।

विवश होकर, रस्सी को बल देते हुए, और बर्छे से कच्ची गिरहें लगाते हुए, मैं और रेवा जगदीश के पास पहुँच गए—मैं नीचे से ऊपर की ओर चढ़ा और रेवा ऊपर से नीचे की ओर उतरा। जगदीश घुटनों के बल पड़ा हुआ कराह रहा था।

जगदीश सहारा लेकर उठा, परन्तु फिर बैठ गया और कहने लगा, "अब मुझसे न चला जायगा। पाँव में बड़ी चोट लगी है।"

चारों ओर धुन्ध और भी गहरी होती जा रही थी। वायु की गति में भयंकर तीव्रता आगई थी और बर्फ चुपचाप गिर रही थी।

"हु...हूआ...हू...आ आ आ हू...हूआ...हू..." रेवा ने फिर सीटी बजाई। सीटी की तीखी पैनी आवाज़ किसी नोकदार छुरी की धार की भांति तिलमिलाती हुई, झंझा को चीरती हुई निकल गई और फिर चारों ओर सन्नाटा छागया।

रेवा ने कुछ देर ठहरकर फिर सीटी बजाई। हम तीनों धड़कते दिल से सीटी के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु चारों ओर झंझा का भयानक शब्द मानो हमारा उपहास कर रहा था। सर्दी पल-पल में बढ़ रही थी। हाथ-पांव सुन्न हो रहे थे और आंखों में नींद

वह नींद जो ऐसे अवसर पर मौत की अगुवानी में आती है।

"मत सोओ, जगदीश, मत सोओ।" रेवा सीटियों के बीच में बार-बार कहता। मेरी आँखों में एक विचित्र-सा नशा था—पपोटे स्वतः बन्द हुए जाते थे। मैं जानता था कि इस समय जैसे भी हो नींद को दूर रखना चाहिए। जानता था कि यह नशा मृत्यु का नशा है,— यह नींद सदा के लिए आरही है—कभी समाप्त न होने वाली नींद—परन्तु फिर भी आँखें बलपूर्वक झपक रही थीं। और जगदीश बेचारा तो बिल्कुल ऊँघ रहा था।

रेवा ने कहा, "तुम दोनों मेरी बात सुनो। बरफ़ मुट्ठियों में लेकर भींचो, खूब जोर से भींचो। जोर लगाओ, और जोर लगाओ......"

"हूआ...आ...हू...हूआ आ...हू...।" दूर नीचे से मद्धम सीटी की आवाज सुनाई दी। रेवा ने उत्तर में सीटी बजाई। ऐसा लगा मानो सीटी की आवाज़ दूर-दूर फैलती जा रही है। इस सीटी में कितनी अनुनय-विनय थी, कितनी पुकार, कितना भय, और कितना आशा! हमारे मन उसका उत्तर सुनने के लिए व्याकुल हो उठे। क्या सचमुच सीटी का उत्तर आया था? कहीं यह केवल छलावा तो न था?

परन्तु दूर से सीटी का शब्द फिर सुनाई दिया। मद्धम सीटी, आशा देने वाली, जीवन का सन्देश! उस बर्फीले झक्कड़ में वह शब्द मानो समुद्र में प्रकाश-स्तम्भ की भांति चमक उठा।

कुछ ठहरकर रेवा ने फिर सीटी बजाई। फिर उत्तर आया। इसी तरह एक घण्टा बीत गया। आध घण्टा और ध्रुव आने वाला हमारे आस-पास ही कहीं था। थोड़ी देर में हमारे सामने एक अधेड़ आयु का बलिष्ठ पहाड़ी खड़ा था। उसकी छाती पर एक लालटेन बँधा थी, जिसका प्रकाश उस गहन धुन्ध में एक-आध गज से अधिक दूर नहीं जा रहा था। उसके साथ एक इकहरे शरीर का नवयुवक था। परन्तु धुन्ध में उसकी आकृति स्पष्ट दिखाई नहीं देती थी—केवल दो

छाया खड़ी हुई लगती थीं।

वलिष्ठ पहाड़ी ने पूछा, "क्या बात है? तूफ़ान में कैसे घिर गए?"

रेवा ने उत्तर दिया, "हमारे एक साथी को चोट आगई है और...।" रेवा ने इतना कहकर वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

पहाड़ी कुछ क्षणों तक चुपचाप खड़ा रहा। उसका सांस धौंकनी की भांति चल रहा था सांस ठीक होने पर उसने अपने साथी से—उस इकहरे शरीर वाले नवयुवक से—जगदीश की ओर संकेत करके कहा, "इसे उठा लो, मैं कठिनता से रास्ता दिखा सकूंगा।" पतली-सी छाया कुछ क्षणों के पश्चात् झुकी और फिर उसने जगदीश को अपने बलवान् हाथों से उठाकर अपनी पीठ पर रख लिया। दूसरे पहाड़ी ने एक रस्सी से जगदीश की टांगें अपने साथी की पीठ के साथ बाँध दीं। उसने एक दूसरा रस्सा लेकर उसका एक सिरा अपनी कमर से बाँधा, फिर उसे उस नवयुवक की कमर के चारों ओर लपेटा, उसके पश्चात् वह रस्सा मैंने लपेटा और अन्त में रेवा ने उसे अपनी कमर से बाँध लिया।

"तैयार हो?" पहाड़ी ने हमें सावधान करते हुए कहा—"बर्छे मजबूती से हाथों में थाम लो। एक...दो...तीन।" यह कहकर उसने चलना प्रारम्भ किया। इस भयानक निस्तब्धता और अँधेरे में हमारा बेड़ा बर्फ़ के समुद्र के बीच में होकर गरजन की ओर चल पड़ा।

× × ×

पहाड़ी का घर तुङ्ग के नीचे था। वहाँ पहुँचकर उसने बहुत फुर्ती से दो-तीन खालें निकालीं और उन्हें धरती पर बिछा दिया। दूसरे पहाड़ी ने जगदीश को ऊपर लिटा दिया। जगदीश बेहोश था। या शायद, बर्फ़ की नींद सो रहा था। अधेड़ आयु वाला पहाड़ी तुङ्ग की खोख में गया और वहाँ से चमड़े की एक छोटी-सी गोल[illegible]-सी निकालकर लाया। अलाव के प्रकाश में मैंने देखा कि[illegible]

नाफ़ा था।

"जोशी, लालटेन बुझा दो।" पहाड़ी ने अपने साथी से कहा, जो एक ओर बैठकर सुस्ताने लगा था। पहाड़ी का साथी अलाव की ओर बढ़ा। उसे मैंने अब अलाव के प्रकाश में अच्छी तरह देखा। वह एक युवा लड़की थी। उसने अपनी समूर की टोपी उतारी जिसने उसके लम्बे बाल छिपा रखे थे। उसकी आँखें थकावट के कारण बार-बार बन्द हो रही थीं। उसका मुँह पसीने से तर था। पहाड़ी की कमर से उसने लालटेन खोली और उसे बुझा दिया। फिर उसे लिए हुए, सर को एक ओर झुकाए हुए वह एक कोने में चली गई।

पहाड़ी घुटनों के बल झुका और जगदीश की सांस को ध्यानपूर्वक सुनने लगा। थोड़ी देर बाद उसने लकड़ी के एक बड़े से चम्मच में गरम दूध डाला, उसमें कस्तूरी मिलाई और दूध को जगदीश के मुख में उडेल दिया। एक दूसरे चम्मच में उसने एक पदार्थ डाला और उसे गर्म किया। फिर उसमें भी थोड़ी सी कस्तूरी मिलाई और जोशी से कहा, "बेटा, तनिक इधर तो आओ, इनकी कनपटियों को मलो। यह लो रोग़न।"

जोशी ने आकर जगदीश का कनटोप उतारा और उसका सर अपनी गोद में रखकर वह उसकी कनपटियों पर रोग़न मलने लगी। पहाड़ी वृक्ष के तने का सहारा लेकर बैठ गया। जगदीश का सांस कभी धीमा चलने लगता था कभी तीव्रऔर कभी उसके सांस में गर्र-गर्र का शब्द सुनाई देने लगता—जैसे घड़ी में चाबी देते समय सुनाई देता है। लड़की धीरे-धीरे उसकी कनपटी सहला रही थी। मैं अधमुंदी आँखों से उसकी ओर देखने लगा। वह जगदीश पर इस तरह झुकी हुई थी कि उसका आधा चेहरा अन्धकार में था और आधा अलाव के प्रकाश में। मैं उसका चेहरा साफ़ देख सकता था। वह आर्य और मंगोल आकृतियों का एक सुन्दर मिश्रण था, गुलाब और केसर के रंगों का एक अत्यन्त आकर्षक मेल। उसके पपोटे इस प्रकार झुके हुए थे कि आँखें बन्द लगती थीं। जोशी!......सहसा मुझे लगा कि शायद यह सब एक

स्वप्न है। मैंने आँखें बन्द कर लीं और थोड़ी देर के बाद फिर खोलीं। वही दृष्य सामने था—वही बौना, बलिष्ठ पहाड़ी, जो अब तुङ्ग के तने के सहारे बैठा-बैठा सो गया था, वही लड़की जगदीश का सिर सहला रही थी। जगदीश का साँस अब ठीक चल रहा था। अलाव का प्रकाश मन्द पड़ता जा रहा था। ऊँघते, जागते, आँखें झपकते, खोलते, इस विचित्र दृश्य को देखते-देखते न जाने किस समय मेरी आँख लग गई।

दूसरे दिन जब आँख खुली तो मैंने देखा कि तुङ्ग के विशाल वृक्ष की छाया में मैं लेटा हुआ था, परन्तु जगदीश, जीशी और पहाड़ी—तीनों—कहीं दिखाई न दिए। कुछ देर तक मन में यह विचार बना रहा कि कल जो कुछ देखा था वह केवल एक स्वप्न था। आँखें मलते हुए मैं इधर-उधर देखने लगा। परे धूप में एक रेवड़ चरता हुआ दिखाई दिया। मैंने जगदीश को पुकारा। रेवड़ में से एक-दो बकरियों ने मेरी ओर मुँह उठाकर देखा। मैंने फिर जगदीश को पुकारा। सहसा तने की खोख में से पहड़ी मुस्कराता हुआ बाहर निकला और कहने लगा, "गरजन देवता की कृपा से कल आपके प्राण बच गए।"

मैं उठ बैठा और पहाड़ी की ओर ताकते हुए कहने लगा, "धन्य-वाद! आपका सहस्र बार धन्यवाद है। आपका और आपकी वीर पुत्री का। क्या नाम है उसका? जीशी?"

"हां, जीशी ही है उसका नाम। मेरी नन्हीं जीशी! वह बहुत अच्छी लड़की है। गरजन देवता उससे बहुत प्यार करते हैं। वह सब बर्फीले रास्तों से परिचित है। गरजन देवता उसे कभी हानि नहीं पहुँचने देते। छोटी आयु में ही उसकी मां मर गई थी। गरजन देवता ने ही उसका पालन-पोषण किया है। गरजन देवता जीशी से बहुत प्यार करते हैं।

मैंने मन में सोचा, एक गरजन देवता ही क्या, जीशी से तो हर कोई प्रेम करना चाहेगा। मैंने पहाड़ी से पूछा, "जगदीश कहाँ है?"

पहाड़ी ने उत्तर दिया, "जब उनकी आंख खुली तो

"ज़ीशी, लालटेन बुझा दो।" पहाड़ी ने अपने साथी से कहा, जो एक ओर बैठकर सुस्ताने लगा था। पहाड़ी का साथी अलाव की ओर बढ़ा। उसे मैंने अब अलाव के प्रकाश में अच्छी तरह देखा। वह एक युवा लड़की थी। उसने अपनी समूर की टोपी उतारी जिसने उसके लम्बे बाल छिपा रखे थे। उसकी आँखें थकावट के कारण बार-बार बन्द हो रही थीं। उसका मुँह पसीने से तर था। पहाड़ी की कमर से उसने लालटेन खोली और उसे बुझा दिया। फिर उसे लिए हुए, सर को एक ओर झुकाए हुए वह एक कोने में चली गई।

पहाड़ी घुटनों के बल झुका और जगदीश की सांस को ध्यानपूर्वक सुनने लगा। थोड़ी देर बाद उसने लकड़ी के एक बड़े से चम्मच में गरम दूध डाला, उसमें कस्तूरी मिलाई और दूध को जगदीश के मुख में उडेल दिया। एक दूसरे चम्मच में उसने एक पदार्थ डाला और उसे गर्म किया। फिर उसमें भी थोड़ी सी कस्तूरी मिलाई और ज़ीशी से कहा, "बेटा, तनिक इधर तो आओ, इनकी कनपटियों को मलो। यह लो रोग़न।"

ज़ीशी ने आकर जगदीश का कनटोप उतारा और उसका सर अपनी गोद में रखकर वह उसकी कनपटियों पर रोग़न मलने लगी। पहाड़ी वृक्ष के तने का सहारा लेकर बैठ गया। जगदीश का सांस कभी धीमा चलने लगता था कभी तीव्र और कभी उसके सांस में गर्र-गर्र का शब्द सुनाई देने लगता—जैसे घड़ी में चाबी देते समय सुनाई देता है। लड़की धीरे-धीरे उसकी कनपटी सहला रही थी। मैं अधमुंदी आँखों से उसकी ओर देखने लगा। वह जगदीश पर इस तरह झुकी हुई थी कि उसका आधा चेहरा अन्धकार में था और आधा अलाव के प्रकाश में। मैं उसका चेहरा साफ़ देख सकता था। वह आर्य और मंगोल आकृतियों का एक सुन्दर मिश्रण था, गुलाब और केसर के रंगों का एक अत्यन्त आकर्षक मेल। उसके पपोटे इस प्रकार झुके हुए थे कि आँखें बन्द लगती थीं। ज़ीशी !......सहसा मुझे लगा कि शायद यह सब एक

स्वप्न है। मैंने आँखें बन्द कर लीं और थोड़ी देर के बाद फिर खोलीं। वही दृश्य सामने था—वही बौना, बलिष्ठ पहाड़ी, जो अब तुङ्ग के तने के सहारे बैठा-बैठा सो गया था, वही लड़की जगदीश का सिर सहला रही थी। जगदीश का साँस अब ठीक चल रहा था। अलाव का प्रकाश मन्द पड़ता जा रहा था। ऊँघते, जागते, आँखें झपकते, खोलते, इस विचित्र दृश्य को देखते-देखते न जाने किस समय मेरी आँख लग गई।

दूसरे दिन जब आँख खुली तो मैंने देखा कि तुङ्ग के विशाल वृक्ष की छाया में मैं लेटा हुआ था, परन्तु जगदीश, जीशी और पहाड़ी—तीनों—कहीं दिखाई न दिए। कुछ देर तक मन में यह विचार बना रहा कि कल जो कुछ देखा था वह केवल एक स्वप्न था। आँखें मलते हुए मैं इधर-उधर देखने लगा। परे धूप में एक रेवड़ चरता हुआ दिखाई दिया। मैंने जगदीश को पुकारा। रेवड़ में से एक-दो बकरियों ने मेरी ओर मुँह उठाकर देखा। मैंने फिर जगदीश को पुकारा। सहसा तने की खोख में से पहाड़ी मुस्कराता हुआ बाहर निकला और कहने लगा, "गरजन देवता की कृपा से कल आपके प्राण बच गए।"

मैं उठ बैठा और पहाड़ी की ओर ताकते हुए कहने लगा, "धन्यवाद! आपका सहस्र बार धन्यवाद है। आपका और आपकी वीर पुत्री का। क्या नाम है उसका? जीशी?"

"हां, जीशी ही है उसका नाम। मेरी नन्हीं जीशी! वह बहुत अच्छी लड़की है। गरजन देवता उससे बहुत प्यार करते हैं। वह सब बर्फीले रास्तों से परिचित है। गरजन देवता उसे कभी हानि नहीं पहुँचने देते। छोटी आयु में ही उसकी मां मर गई थी। गरजन देवता ने ही उसका पालन-पोषण किया है। गरजन देवता जीशी से बहुत प्यार करते हैं।

मैंने मन में सोचा, एक गरजन देवता ही क्या, जीशी से तो हर कोई प्रेम करना चाहेगा। मैंने पहाड़ी से पूछा, "जगदीश कहाँ है?"

पहाड़ी ने उत्तर दिया, "जब उनकी आंख खुली तो उनके पाँव

की मोच बिल्कुल ठीक हो चुकी थी। अब वे नन्दनसर तक सैर करने गये हैं। चोची को मैंने उनके साथ भेज दिया है। वे दोनों अब लौट-कर आ ही रहे होंगे। आप तो खूब सोए।"

मैंने मन में सोचा, हाँ, मैं तो खूब सोया, क्योंकि रात मेरी कन-पटियों पर किसी ने मालिश नहीं की थी। "वे दोनों"—इन शब्दों से मेरे मन में एक हल्की-सी खीज, एक अज्ञात-सी चुभन, उत्पन्न हुई। यह जगदीश ! कुछ हर बार बाजी मार ले जाता है। मैंने पहाड़ी से पूछा, "नन्दनसर यहाँ से कितनी दूर है ?"

"यही कोई कोस-भर, उस ओर।"

"अच्छा तो मैं भी नहा-धो आऊँ।" पहाड़ी से कहकर मैं भी नन्दनसर की ओर चल पड़ा।

मैं थोड़ी ही दूर गया था कि सामने के टीले पर से जगदीश और चोची दोनों को हँसते, दौड़ते आते हुए देखा। दोनों ने लम्बे समूरी चोगे पहन रखे थे और दोनों के सिरों पर समूरी टोपियां थीं, जिन पर एक ओर पीले-पीले फूलों के गुच्छे बँधे हुए थे। जगदीश का अट्टहास मुझे बहुत बुरा लगा।

"इतनी देर सोये रहे ?" जगदीश ने प्रश्न किया। प्रश्न क्या था, मेरा खुला उपहास था।

"इतने सवेरे जाग उठे ?" मैंने उत्तर दिया। उत्तर क्या था, जगदीश पर खुला व्यंग्य था।

"नहाने चले हो ?" जगदीश ने पूछा।

"पाँव की मोच निकल गई है क्या ?" मैंने प्रश्न किया।

चोची जोर से हँस पड़ी और अपना बायाँ बाहु मेरे बाहु में डाल-कर कहने लगी, "आओ, हम तीनों फिर नन्दनसर चलें।" इस पर हम तीनों नन्दनसर की ओर मुड़ लिये।

नन्दनसर पहुँचकर मैं झील में नहाने लगा और वे दोनों जंगली फूलों की क्यारियों में बैठकर बातें करने लगे। परमात्मा जाने उन्होंने

क्या-क्या बातें कीं। कभी वे हँस पड़ते, कभी एक-दूसरे की ओर फूल तोड़-तोड़ कर फेंकते। जगदीश ने न जाने जोशी को क्या कहा कि वह सहसा उठकर दौड़ने लगी—जंगल की मस्त हरिणी की भांति। जगदीश उठकर उसके पीछे दौड़ने लगा। सचमुच ही उसके पांव से मोच निकल चुकी थी। फूलों के तख्तों में उसने कई चक्कर लगाए परन्तु वह जोशी को न पकड़ सका। उसके लम्बे-लम्बे काले बाल वायु में लहरा रहे थे। वह भागती हुई, छलांगें लगाती हुई, टीले के पीछे ओझल हो गई। जगदीश भी भागता हुआ टीले के पीछे चला गया।

झील का पानी बरफ़ के समान ठण्डा था। मेरा शरीर थोड़ी ही देर में अकड़ने लगा, अतः मैं शीघ्र ही नहाकर बाहर निकल आया और फूलों के बीच में बैठकर धूप सेंकने लगा। आज गरजन देवता की चोटी पर बादलों का निशान भी न था। मैं निगाह दौड़ाकर पहाड़ की उस सलवट को ढूंढने लगा जहां हमारा कैम्प था, परन्तु वहां से वह सलवट दिखाई न पड़ी।

जब मेरा शरीर अच्छी तरह गरम हो गया और आंखों में तन्द्रा छाने लगी, तो मैंने कपड़े पहने और चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। इतने में जोशी और जगदीश भी हँसते, दौड़ते लौट आए। हम झोंपड़ी की ओर चल पड़े।

—दूध, मक्खन, मकई की रोटियां और नमक या गुड़। कभी-कभी नीचे की बस्तियों से प्याज़ और लाल मिर्चें भी आ जाती हैं, अन्यथा वही दूध और मकई की रोटियां, वही मक्खन और पनीर। गरजन में हर चरवाहे और चरवाहीके शरीर से पनीर की सौंधी-सौंधी सुगन्ध आती रहती है।

गरजन का सारा जीवन स्वप्नवत् है। गरजन सचमुच ही एक स्वप्न है। ऐसे प्रान्तों का इस युग में तो लोप ही हो रहा है। संसार कटु-सत्यों से भरा जा रहा है। कृत्रिम दूध-घी, कृत्रिम प्रेम और कृत्रिम सामाजिक सम्बन्ध। जीवन कारखाने से घर और घर से कारखाने तक सीमित है। इस जीवन में बालक बूढ़ों की सी बातें करते हैं। परन्तु गरजन में बूढ़े भी शैशव का भोलापन लिए हुए हैं। अलाव के चटखते कोयलों के धीमे-धीमे प्रकाश में चरवाहियां ऊन कात रही हैं, तकली घूम रही है, आंखें और हाथ एक विशेष क्रम से हिल रहे हैं। एक चरवाहा कहानी सुना रहा है—रीमी की कहानी—"रीमी गरजन की सब से सुन्दर लड़की थी। नन्दनसर की नीली झील का प्रतिबिम्ब उसकी सुन्दर आंखों में चमकता था। उसका मुख गरजन की बरफ़ के समान उज्ज्वल और आभायुक्त था। डूबते हुए सूर्य ने अपनी लालिमा उसके गालों में भर दी थी। ऐसी लड़की का किसी देवता से ही विवाह हो सकता था। किसी चरवाहे को उससे प्यार करने का साहस ही न होना चाहिये था। गरजन देवता की दृष्टि उस पर थी। वह दिन भर अकेली घूमती फिरती थी और कभी-कभी निडरता के साथ गरजन की सबसे ऊंची चोटी पर जा चढ़ती थी। उसे कभी डर नहीं लगता था। शायद उसने गरजन देवता के दर्शन कर लिए थे। वह अपने माता-पिता को बहुत प्यारी थी, परन्तु वे बेचारे उसे किसी से ब्याह नहीं सकते थे। वाटू एक साधारण चरवाहा था—बेचारा एक मनुष्य। उसने रीमी से प्रेम किया। बड़े-बूढ़ों ने भी कई बार उसे समझाया, परन्तु वह न माना। गरजन देवता ने कई बार उसे चेतावनी दी,

परन्तु वह तो आग से खेल रहा था। एक बार वाटू को लकसर की घाटी में गरजन देवता स्वयं मिले थे। चाँदनी रात थी और घाटियाँ, चोटियाँ और मैदान एक रुपहली निस्तब्धता में खोए हुए थे। न वायु चल रही थी और न बादल का कहीं निशान था। इस शान्त, निश्चल वातावरण में केवल दो हृदय धड़क रहे थे। रीमी और वाटू। वाटू ने साहस करके रीमी का हाथ पकड़ लिया। सहसा, उसी क्षण, उसे सामने ही बरफ़ का एक गोला वायु में उड़ता हुआ दिखाई दिया। वाटू ने घबराकर रीमी का हाथ छोड़ दिया। गोला वायु में तैरता हुआ आकाश की ओर उड़ान भरने लगा। फिर उसके सामने धरती से आकाश तक बरफ़ की एक लम्बी लकीर-सी खिंच गई। रीमी की आँखें बन्द और उसका मुख सफेद हो गया। वाटू इस लकीर को देखकर काँपने लगा। दोनों वहाँ से घर लौट आए। परन्तु वाटू ने फिर भी रीमी से प्रेम करना न छोड़ा।"

कहानी सुनाने वाले चरवाहे ने कहानी को आगे बढ़ाते हुए कहा, "गरजन देवता ने वाटू को एक बार फिर चेतावनी दी। देवता ने एक रात वाटू को तूफ़ान में घेरे रखा। वाटू को उस रात देवता की भयानक ध्वनि में ये शब्द कई बार सुनाई दिये, "वाटू! रीमी का प्रेम छोड़ दे। रीमी का प्रेम छोड़ दे!" कभी उसे भेड़-बकरियों की आवाजें सुनाई देतीं, कभी कोई जलता हुआ अलाव किसी तुंग के नीचे दिखाई देने लगता, परन्तु ये सब गरजन देवता के चमत्कार थे। वह रातभर तूफ़ान में घिरा रहा और जब दूसरे दिन घर पहुँचा तो उसकी एक आँख जाती रही थी और उसके पाँव की अंगुलियाँ सदा के लिए नीली हो गई थीं। परन्तु वह फिर भी रीमी से प्रेम किये बिना न माना।"

"फिर क्या हुआ?" एक चरवाही ने काँपते हुए स्वर में पूछा।

बस गरजन की कहानियाँ इसी प्रकार की होती हैं। इनमें प्रेम होता है, बाल्यकाल के स्वप्न और प्रकृति के भयानक दृश्य। [illegible] के धीमे-धीमे प्रकाश में चरवाहियाँ ऊन कात रही होती हैं।

श्रीर रोमी के सुन्दर पुतले उनकी कल्पना में उभरते चले आते हैं। चरवाहा कहानी सुनाता रहता है।

रेवा व्याकुल हो रहा है। उसे न तो कविता से प्रेम है श्रौर न कहानियों से। वह इस बात पर श्रापत्ति करता है कि हम ने पहाड़ की ऊँची चोटी को छोड़कर यहां घाटी की ढलवान पर रहना क्यों प्रारम्भ कर दिया है। उसका मन शिकार की तलाश में अधिक प्रसन्न रहता है। यहाँ की मक्खन की पुतलियों या अलग़ोजे की धुनों या गरजन देवता के कार्यों में उसे कोई रुचि नहीं है। वह तो प्राकृतिक शक्तियों से श्रौर संकटों से—यहाँ तक कि मृत्यु से—टक्कर लेना चाहता है। उसे कठिनाइयों श्रौर संकटों का सामना करने में श्रानन्द मिलता है। वह केवल एक सुगन्धि को पसन्द करता है—जब कभी वह किसी कस्तूरी-मृग को घायल करता है तो उसके नाफे पर तुरन्त हाथ रख देता है। नाफे की थैली में से सुगन्धि की लपटें फूट-फूट कर निकलती हैं। हरिण के प्राण छटपटा रहे हैं, उसका जीवन नाफे में से सुगन्धि की लपटें बनकर निकल रहा है। रेवा अपने शिकार पर झुका हुआ है। वह नाफे को पूरे बल के साथ पकड़कर उसे चाकू से काटकर हिरण के शरीर से अलग कर डालता है। कहते हैं कि यदि कस्तूरी-मृग का शिकार करते हुए तुरन्त ही उसकी नाभि को चीरकर उसके शरीर से अलग न किया जाए तो सारी कस्तूरी उसके शरीर में समा जाती है श्रौर नाफे में कुछ भी नहीं बचता। रेवा कस्तूरी की सुगन्धि की ही प्रशंसा कर सकता है। उसे पनीर की सौंधी-सौंधी सुगन्धि से घृणा है। जोशी के शरीर, उसके बालों श्रौर उसके वस्त्रों में भी यही पनीर की सौंधी-सौंधी सुगन्धि रची हुई है। उसकी समझ में यह बात नहीं श्राती कि जगदीश एक 'साहब' होकर भी कैसे ज़ोशी से प्रेम कर सकता है। स्वयं जगदीश अपनी इस नई भावना पर श्राश्चर्य-चकित था। उसने श्रौर मैंने—हम दोनों ने—कितनी ही बार पहाड़ी युवतियों से 'प्रेम' किया था। परन्तु वह प्रेम कुछ रुपयों श्रौर दो

एक रेशमी रूमालों पर आश्रित रहता था। कभी हम उसे कवित्वमय भावना कह लेते थे और कभी सामयिक विवाह। परन्तु यह किस भयानक तूफ़ान के आने का संकेत था कि जगदीश जीशी को देखते ही उसम ऐसा खो जाता था कि उसके सिवाय जगदीश को संसार की कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती थी। यहाँ न शिक्षा का प्रश्न था, न शिष्टाचार का; न दहेज का और न कुल का। जीशी सभ्य समाज की सारी बातों से अनभिज्ञ। फिर भी न जाने क्यों जगदीश अपनी मूर्खता पर अड़ा हुआ था। वह जीशी से विवाह करना चाहता था, विवाह! समझते हो दोस्त! जगदीश उस असंस्कृत, अनपढ़ पहाड़ी लड़की से विवाह करना चाहता था, जिसने सोफ़े को कभी देखा तक न था, जिसके पिता के पास गजभर भूमि भी न थी; जिसकी चाल-ढाल जंगल में रहने वाले पशु-पक्षियों के समान थी। गरजन देवता जगदीश को इससे अधिक शाप और क्या दे सकता था? मैंने जगदीश को कई बार समझाने का प्रयत्न किया—"जगदीश, तुम पागल हो गए हो क्या? गरजन का जीवन बेघर असभ्य गड़रियों का जीवन है। मनुष्य ऐसे जीवन से बहुत आगे बढ़ चुका है। तुंग के पेड़ों के नीचे नहीं रहता, वरन् बड़-बड़े नगर बसाकर रहता है। वह केवल मक्खन और पनीर खाकर निर्वाह नहीं करता, वरन् सैंकड़ों पदार्थ उसके स्वाद को सन्तुष्ट करते हैं। जीशी एक पहाड़ी फूल है जो मैदानों की गरमी में जाते ही झुलस जाएगा। तुम वहां जाकर स्वयं इससे घृणा करने लगोगे। तुम जिस प्रकार के समाज में रहते हो, जीशी उस में एक दिन भी सुखी नहीं रह सकेगी। वह बेचारी शहर के घुटे-घुटे वातावरण में वैसे ही घुटकर मर जाएगी। शहरी जीवन का आकाश बहुत छोटा होता है और धरती और भी नपी-तुली। वहाँ न तो बर्फ़ीली चोटियां होती हैं और न हरी-भरी घाटियाँ। जब गरजन से तुम मैदानों की सभ्यता में लौटोगे तब तुम्हें मेरी बातों का मूल्य मालूम होगा। लोग तुम्हें देखकर हँसेंगे, कहेंगे जगदीश जंगल से एक जानवर पकड़ लाया है।"

परन्तु जगदीश बेचारा सचमुच विवश था। शायद अपने जीवन में उसने पहली बार किसी से सच्चा प्रेम किया था। यह प्रेम कुछ रुपयों और दो-एक रेशमी रूमालों पर आश्रित न था। यह किसी अनोखी अग्नि की लौ थी जो उसकी आत्मा के कोने-कोने में कौंधती हुई प्रतीत होती थी। यह किसी के एवं उसके अपने बस का रोग न था। अब जगदीश और जीशी बहुधा इकट्ठे रहते थे। पहले-पहल जीशी हम तीनों के साथ शिकार खेलने जाती थी। उसने शीघ्र ही बन्दूक चलाना सीख लिया और कुछ दिनों से तो वह शिकार करने में बड़ी दक्ष हो गई थी। परन्तु थोड़े दिनों से जीशी और जगदीश अकेले शिकार को जाने लगे थे। रेवा और मैं बहुधा उनसे विपरीत दिशा में जाते, परन्तु किसी घाटी के त्रिकोण में कभी-कभी हम एक-दूसरे से आ मिलते। वे दोनों बाहों में बाहें डाले चले आ रहे होते। उनके कन्धों पर बन्दूकें होतीं, झोलों में दिन भर का शिकार, और आँखों में एक-दूसरे के लिए अथाह, अनन्त प्रेम !

जगदीश विवश था, परन्तु यह अवश्य जानता था कि यह प्रेम मैदानों में नहीं पनप सकेगा। वह इस सुन्दर स्वप्न को शाश्वत, चिर-स्थायी बनाना चाहता था। और जगदीश ने सचमुच अपने स्वप्न को स्थायी बना लिया। मैं उस तूफ़ानी रात को कभी नहीं भुला सकता जब उसी तुंग के पेड़ के नीचे मैं, रेवा और वह पहाड़ी रात भर जग-दीश और जीशी की प्रतीक्षा करते रहे थे। बर्फ़ीली वायु के झोंकों ने रेवड़ को इस प्रकार एकत्रित कर दिया था कि वे बेचारे एक-दूसरे की थूथनियों में मुँह छिपाए पड़े थे। तुंग के बाहर झक्कड़ चल रहा था। बादल गरज-गरज पड़ते थे और और बिजलियां आकाश और धरती के बीच में कौंध जाती थीं। चारों ओर एक नारकीय दृश्य था जिसमें केवल बादलों की गरज, वायु की भयानक सीटियां और चोटियों पर से गिरती हुई बरफ़ के अट्टहास थे। रेवा ने सवेरे ही आने वाले झक्कड़ के सम्बन्ध में हम सबको चेतावनी दे दी थी। परन्तु जगदीश

ओर ज़ोशी ने हँसकर बात टाल दी। उस दिन वह किसी कस्तूरी-मृग का शिकार करना चाहती थी। कस्तूरी-मृग गरजन पहाड़ की चोटियों पर घूम रहे थे। जगदीश और ज़ोशी दोनों सवेरे ही खाने-पीने की सामग्री साथ लेकर उन ख़तरनाक चोटियों की ओर चल पड़े थे, जहाँ पहले हमारा कैम्प था। मैंने और रेवा ने उन्हें रूमाल हिला-हिला कर विदा दी थी।

यह हमारी अन्तिम विदा थी। उस रात गरजन के देवता ने अपनी प्रेमिका को अपनी बर्फीली छाती से सदा के लिए लिपटा लिया और अपने प्रतिद्वन्द्वी, अपने शत्रु की छाती में अपनी बिजली की कटार घोंप दी। दूसरे दिन जब हम कुछ गड़रियों को साथ लेकर उन्हें ढूंढने के लिए निकले तो हमने उन्हें पहाड़ की चोटी के पास, एक सलवट के नीचे मरे हुए पाया। जगदीश की आँखें खुली थीं, और ज़ोशी की आंखें भी, और वे दोनों एक-दूसरे को देखते-देखते मर गए थे। ज़ोशी बरफ़ पर लेटी हुई थी और जगदीश ने उसका सिर अपनी जांघ पर रखा हुआ था। ज़ोशी की आंखें गहरी नीली थीं—जैसे नन्दनसर की झील, और जगदीश की आंखें अन्दर को धँसी हुई थीं। उसके चारों ओर गहरे काले दायरे बने हुए थे। मैं मानो जगदीश की आंखों की गहराइयों में झांकने का प्रयत्न करने लगा। आह! उन गहराइयों में कितनी पीड़ा भरी हुई थी। किसी बेबस, घायल, सिसकते हुए हरिण की अन्तिम पीड़ा उसकी आंखों में प्रतिबिम्बित हो रही थी। हरिण के प्राण छटपटाए और नाफ़े में से जीवन सुगन्धि बनकर फूट निकला। जब सुन्दर स्वप्न इस संसार से टकराते हैं तो पानी के बुलबुलों की भान्ति टूटकर अदृश्य हो जाते हैं।

+ + +

तुंग के चारों ओर घोर अन्धकार था। अलाव के चारों
सोया हुआ था। चरवाहियां तकली पर ऊन कात रही थीं

परन्तु जगदीश बेचारा सचमुच विवश था। शायद अपने जीवन में उसने पहली बार किसी से सच्चा प्रेम किया था। यह प्रेम कुछ रुपयों और दो-एक रेशमी रूमालों पर आश्रित न था। यह किसी अनोखी अग्नि की लौ थी जो उसकी आत्मा के कोने-कोने में कौंधती हुई प्रतीत होती थी। यह किसी के एवं उसके अपने बस का रोग न था। अब जगदीश और जोशी बहुधा इकट्ठे रहते थे। पहले-पहल जोशी हम तीनों के साथ शिकार खेलने जाती थी। उसने शीघ्र ही बन्दूक चलाना सीख लिया और कुछ दिनों से तो वह शिकार करने में बड़ी दक्ष हो गई थी। परन्तु थोड़े दिनों से जोशी और जगदीश अकेले शिकार को जाने लगे थे। रेवा और मैं बहुधा उनसे विपरीत दिशा में जाते, परन्तु किसी घाटी के त्रिकोण में कभी-कभी हम एक-दूसरे से आ मिलते। वे दोनों बाहों में बाहें डाले चले आ रहे होते। उनके कन्धों पर बन्दूकें होतीं, झोलों में दिन भर का शिकार, और आँखों में एक-दूसरे के लिए अथाह, अनन्त प्रेम !

जगदीश विवश था, परन्तु यह अवश्य जानता था कि यह प्रेम मैदानों में नहीं पनप सकेगा। वह इस सुन्दर स्वप्न को शाश्वत, चिर-स्थायी बनाना चाहता था। और जगदीश ने सचमुच अपने स्वप्न को स्थायी बना लिया। मैं उस तूफ़ानी रात को कभी नहीं भुला सकता जब उसी तुंग के पेड़ के नीचे मैं, रेवा और वह पहाड़ी रात भर जगदीश और जोशी की प्रतीक्षा करते रहे थे। बर्फ़ीली वायु के झोंकों ने रेवड़ को इस प्रकार एकत्रित कर दिया था कि वे बेचारे एक-दूसरे की थूथनियों में मुंह छिपाए पड़े थे। तुंग के बाहर झक्कड़ चल रहा था। बादल गरज-गरज पड़ते थे और और बिजलियां आकाश और धरती के बीच में कौंध जाती थीं। चारों ओर एक नारकीय दृश्य था जिसमें केवल बादलों की गरज, वायु की भयानक सीटियां और चोटियों पर से गिरती हुई बरफ़ के अट्टहास थे। रेवा ने सवेरे ही आने वाले झक्कड़ के सम्बन्ध में हम सबको चेतावनी दे दी थी। परन्तु जगदीश

और ज़ीशी ने हँसकर बात टाल दी। उस दिन वह किसी कस्तूरी-मृग का शिकार करना चाहती थी। कस्तूरी-मृग गरजन पहाड़ की चोटियों पर घूम रहे थे। जगदीश और ज़ीशी दोनों सवेरे ही खाने-पीने की सामग्री साथ लेकर उन ख़तरनाक चोटियों की ओर चल पड़े थे, जहाँ पहले हमारा कैम्प था। मैंने और रेवा ने उन्हें रूमाल हिला-हिला कर विदा दी थी।

यह हमारी अन्तिम विदा थी। उस रात गरजन के देवता ने अपनी प्रेमिका को अपनी बर्फ़ीली छाती से सदा के लिए लिपटा लिया और अपने प्रतिद्वन्द्वी, अपने शत्रु की छाती में अपनी बिजली की कटार घोंप दी। दूसरे दिन जब हम कुछ गड़रियों को साथ लेकर उन्हें ढूंढ़ने के लिए निकले तो हमने उन्हें पहाड़ की चोटी के पास, एक सलवट के नीचे मरे हुए पाया। जगदीश की आँखें खुली थीं, और ज़ीशी की आंखें भी, और वे दोनों एक-दूसरे को देखते-देखते मर गए थे। ज़ीशी बरफ़ पर लेटी हुई थी और जगदीश ने उसका सिर अपनी जांघ पर रखा हुआ था। ज़ीशी की आंखें गहरी नीली थीं—जैसे नन्दनसर की झील, और जगदीश की आंखें अन्दर को धँसी हुई थीं। उसके चारों ओर गहरे काले दायरे बने हुए थे। मैं मानो जगदीश की आंखों की गहराइयों में झांकने का प्रयत्न करने लगा। आह! उन गहराइयों में कितनी पीड़ा भरी हुई थी। किसी बेबस, घायल, सिसकते हुए हरिण की अन्तिम पीड़ा उसकी आंखों में प्रतिबिम्बित हो रही थी। हरिण के प्राण छटपटाए और नाफ़े में से जीवन सुगन्धि बनकर फूट निकला। जब सुन्दर स्वप्न इस संसार से टकराते हैं तो पानी के बुलबुलों की भान्ति टूटकर अदृश्य हो जाते हैं।

\+ \+ \+

तुंग के चारों ओर घोर अन्धकार था। अलाव के चारों ओर रेवड़ सोया हुआ था। चरवाहियां तकली पर ऊन कात रही थीं। चरवाहे

हाथों पर अपनी ठोड़ियां थामे हुए ध्यान-मग्न होकर कहानी सुन रहे थे। यह कहानी सुनाने वाला चरवाहा कह रहा था, "बहुत दिन हुए इस तुंग के नीचे एक पहाड़ी बौना रहता था। उसकी लड़की बहुत सुन्दर थी—रूप और यौवन की साक्षात् प्रतिमा। उसका नाम था ज़ीशो। गरजन देवता उससे बहुत प्रेम करते थे। एक दिन इसी तुंग की छाया के नीचे कहीं से तीन शिकारी आकर बैठे..."

एक चरवाही ने साँस रोककर पूछा, "फिर क्या हुआ?"

: ६ :

आँगी

राही ने आकाश की ओर निगाह उठाई—आकाश के गहरे नीले सागर में बादलों के सफेद-सफेद टुकड़े बर्फ़ के बड़े-बड़े तोदों की भांति तैर रहे थे और उनके पास चीलें मँडरा रही थीं। चीलें!—उसने हाँफते हुए अपने माथे का पसीना पोछा—'अब निकट ही कोई गाँव होगा। चीलें मनुष्यों की आबादी की सूचक हैं।' उसने मन में सोचा 'गिद्ध, कौवे, चीलें, मनुष्य—इन सब के गुण एक-दूसरे से बहुत मिलते-जुलते हैं।' इस प्रकार सोचता हुआ, पशु-पक्षी और मनुष्यों की प्रकृति के सम्बन्ध में विभिन्न विचार निर्धारित करता हुआ, वह बहुत-सा रास्ता तै कर गया। कई जगह तिरछी ढलानें थीं, कई जगह ऊँची घाटियाँ थीं जिनके आँचल में खड़े हुए ऐसा लगता था कि उनकी चोटियों पर बादलों के महल बने हुए हैं। परन्तु जब वह चोटियों पर पहुँचता तो बादलों का महल एकाएक उठकर आकाश में टिक जाता। 'इस संसार में कितना धोखा है'—मुसाफिर की कल्पना ने अब दूसरी पगडण्डी पकड़ी—'महात्मा बुद्ध ने सच कहा था कि प्रकृति माया है।' उसने फिर निगाह उठाकर दूर आकाश में तैरते हुए बादलों को देखा—सफ़ेद बुर्राक चमकते हुए लाखों ताजमहल थे और चारों ओर यमुना का नीला पानी फैला हुआ था। उसने सोचा—'इन

ताजमहलों को किस शाहजहाँ ने वनवाया और ये किस प्रेयसी के स्मृति-चिन्ह हैं ?'

राही इसी तरह अपने मन से बातें करता हुआ बहुत दूर निकल गया। अब हवा में शीतलता-सी आ गई थी और सूर्य पश्चिम की ओर जा रहा था। सामने पहाड़ों पर सनोवर के जंगल खड़े थे, जिनका गहरा हरा रंग डूबते हुए सूरज की किरणों में हल्का गुलाबी-सा हो रहा था। 'ये रंग आखिर हैं क्या ? नीला, पीला, हरा, गुलाबी और फिर एक ही इन्द्र-धनुष में सातों रंग या ओस की एक ही बूंद में पूरा इन्द्र-धनुष ! अनोखी बात है। यह कैसा संसार है ! मैं कहाँ जा रहा हूँ और गाँव अभी तक क्यों नहीं आया ?'

वह कन्धे पर पड़े हुए झोले को ठीक करके अपनी छड़ी को धरती पर टेककर रास्ते में खड़ा हो गया और चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। निस्तब्धता, घोर निस्तब्धता और फिर सहसा घण्टियों का शोर। उसे लगा मानो लाखों मन्दिरों और गिरजाओं के घण्टे एकदम झनझना उठे। राही का स्वागत करने के लिए उनकी आवाज़ ने निस्तब्धता का जादू तोड़ डाला। यह आवाज़ गूंजकर व्योम में फैल गई, ऊपर उठे हुए वादलों से टकराती हुई और फिर घूम-घूम कर पश्चिम की ओर से आती हुई मालूम हुई। पश्चिमी मोड़ से भेड़ों, बकरियों, गायों, भैंसों और मेढ़ों का एक रेवड़ निकल रहा था। मुसाफ़िर रास्ता छोड़कर एक ओर ऊँचे टीले पर खड़ा हो गया।

"हा हुम विली, हा हा हुश नीलती, हा हा विली, ही ही" विली और नीलती दो सुन्दर वछियाँ घर वापिस जाने की खुशी में हिरिणियों की तरह छलांगें मार रही थीं और बेचारी चरवाही को उन्हें रेवड़ के साथ रखने में बड़ी परेशानी हो रही थी। नीलती कभी भेड़ों के गल्ले में घुस जाती और उन्हें इतना परेशान करती कि वे 'बे...बा...। बाबे' करती हुई तितर-वितर हो जातीं और सारे रेवड़ की व्यवस्था को जो किसी संयमित सेना की भांति चल रहा था, भंग कर देतीं।

विली नाचती-कूदती हुई बकरियों के पास जाती और उन्हें धक्के मार मारकर आस-पास के टीलों पर चढ़ा देती। बड़ी-बूढ़ी गाएँ और भैंसें बड़े शान्त भाव से और तनिक घृणा से यह दृश्य देखती जाती थीं, मानो कह रही हों—. कर ले दो दिन और ऐश। फिर वह दिन भी आएगा जब तेरी पिछली लातों को बाँधकर तेरा दूध दुहा जायगा। उस समय उछलना। फिर तेरी चाल भी हमारी तरह बेढङ्गी होकर रह जाएगी। अब जी भर कर मस्त हरिणी की तरह छलांगें भर ले।"

नीलती उछलती हुई राही के पास आ गई। उसके गले में बँधी हुई घण्टियों की मधुर स्वर-लहरी उसके नाचते हुए पैरों के लिये घुँघरुओं का काम कर रही थी। फिर अपने पाँव टीले पर टेककर वह राही के पाँव सूँघने लगी।

"नीलती!" चरवाही ने अपनी पतली आवाज़ में चिल्लाकर कहा। उसकी आवाज़ भी एक घण्टी की आवाज़ के समान थी। परन्तु चंचल नीलती ने परवाह न की और बेचारी चरवाही को तंग करने के लिये वह राही का बूट चाटने लगी।

"नीलती, हा! हा! हुश नीलती ही ही।" वह फिर चिल्लाई। चरवाही राही के बिल्कुल निकट आ गई और सोटे से नीलती को मारने लगी। बेचारी तंग आ गई थी। चेहरे पर पसीने की बूँदें थीं और गाल भी क्रोध से तमतमाए हुए थे। नीलती को परे हटाकर उसने निडर दृष्टि से राही की ओर ताका। "राही, को को?" (राही किधर जा रहे हो) उसने पहाड़ी भाषा में राही से पूछा।

राही मुस्करा दिया, फिर कहने लगा, "यह नीलती बड़ी नट-खट है।"

चरवाही के चेहरे से झिझक जाती रही। वह नीलती की ओर, जो मार खाकर भी नाचती-भागती हुई जा रही थी। प्यार भरी दृष्टि से देखकर बोली—"हाँ, अभी यह तीन बरस की भी नहीं हुई।"

"हूँ—और तुम कै बरस की हो?"

ताजमहलों को किस शाहजहाँ ने बनवाया और ये किस प्रेयसी के स्मृति-चिन्ह हैं ?'

राही इसी तरह अपने मन से बातें करता हुआ बहुत दूर निकल गया। अब हवा में शीतलता-सी आ गई थी और सूर्य पश्चिम की ओर जा रहा था। सामने पहाड़ों पर सनोवर के जंगल खड़े थे, जिनका गहरा हरा रंग डूबते हुए सूरज की किरणों में हल्का गुलाबी-सा हो रहा था। 'ये रंग आखिर हैं क्या ? नीला, पीला, हरा, गुलाबी और फिर एक ही इन्द्र-धनुष में सातों रंग या ओस की एक ही बूंद में पूरा इन्द्र-धनुष ! अनोखी बात है। यह कैसा संसार है ! मैं कहाँ जा रहा हूँ और गाँव अभी तक क्यों नहीं आया ?'

वह कन्धे पर पड़े हुए झोले को ठीक करके अपनी छड़ी को धरती पर टेककर रास्ते में खड़ा हो गया और चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। निस्तब्धता, घोर निस्तब्धता और फिर सहसा घण्टियों का शोर। उसे लगा मानो लाखों मन्दिरों और गिरजाओं के घण्टे एकदम झनझना उठे। राही का स्वागत करने के लिए उनकी आवाज़ ने निस्तब्धता का जादू तोड़ डाला। यह आवाज़ गूंजकर व्योम में फैल गई, ऊपर उठे हुए बादलों से टकराती हुई और फिर घूम-घूम कर पश्चिम की ओर से आती हुई मालूम हुई। पश्चिमी मोड़ से भेड़ों, बकरियों, गायों, भैंसों और मेढ़ों का एक रेवड़ निकल रहा था। मुसाफ़िर रास्ता छोड़कर एक ओर ऊँचे टीले पर खड़ा हो गया।

"हा हुम बिली, हा हा हुश नीलती, हा हा बिली, ही हो" बिली और नीलती दो सुन्दर बछियाँ घर वापिस जाने की खुशी में हिरिणियों की तरह छलांगें मार रही थीं और बेचारी चरवाही को उन्हें रेवड़ के साथ रखने में बड़ी परेशानी हो रही थी। नीलती कभी भेड़ों के गल्ले में घुस जाती और उन्हें इतना परेशान करती कि वे 'बे...बा...। बाबे' करती हुई तितर-बितर हो जातीं और सारे रेवड़ की व्यवस्था को जो किसी संयमित सेना की भांति चल रहा था, भंग कर देतीं।

बिली नाचती-कूदती हुई बकरियों के पास जाती और उन्हें धक्के मार मारकर आस-पास के टीलों पर चढ़ा देती। बड़ी-बूढ़ी गाएँ और भैंसें बड़े शान्त भाव से और तनिक घृणा से यह दृश्य देखती जाती थीं, मानो कह रही हों—. कर ले दो दिन और ऐश। फिर वह दिन भी आएगा जब तेरी पिछली लातों को बाँधकर तेरा दूध दुहा जायगा। उस समय उछलना। फिर तेरी चाल भी हमारी तरह बेढङ्गी होकर रह जाएगी। अब जी भर कर मस्त हरिणी की तरह छलांगें भर ले।"

नीलती उछलती हुई राही के पास आ गई। उसके गले में बँधी हुई घण्टियों की मधुर स्वर-लहरी उसके नाचते हुए पैरों के लिये घुँघरुओं का काम कर रही थी। फिर अपने पाँव टीले पर टेककर वह राही के पाँव सूँघने लगी।

"नीलती !" चरवाही ने अपनी पतली आवाज़ में चिल्लाकर कहा। उसकी आवाज़ भी एक घण्टी की आवाज़ के समान थी। परन्तु चंचल नीलती ने परवाह न की और बेचारी चरवाही को तंग करने के लिये वह राही का बूट चाटने लगी।

"नीलती, हा ! हा ! हुश नीलती ही ही।" वह फिर चिल्लाई। चरवाही राही के बिल्कुल निकट आ गई और सोटे से नीलती को मारने लगी। बेचारी तंग आ गई थी। चेहरे पर पसीने की बूँदें थीं और गाल भी क्रोध से तमतमाए हुए थे। नीलती को परे हटाकर उसने निडर दृष्टि से राही की ओर ताका। "राही, को को ?" (राही किधर जा रहे हो) उसने पहाड़ी भाषा में राही से पूछा।

राही मुस्करा दिया, फिर कहने लगा, "यह नीलती बड़ी नट-खट है।"

चरवाही के चेहरे से झिझक जाती रही। वह नीलती की ओर, जो मार खाकर भी नाचती-भागती हुई जा रही थी। प्यार भरी दृष्टि से देखकर बोली—"हाँ, अभी यह तीन बरस की भी नहीं हुई।"

"हूँ—और तुम कै बरस की हो ?"

चरवाही ने एक क्षण के लिए राही की ओर चकित नेत्रों से देखा और दूसरे क्षण उसका चेहरा लज्जा से लाल हो गया। उसने मुँह फेर लिया और रेवड़ के साथ-साथ चलने लगी। वह गायों की पीठ पर हल्के हल्के डण्डे मार रही थी।

राही टीले से उतर कर चरवाही के साथ हो लिया। और उसका सोटा छीनकर कहने लगा—"लगता है तुम्हारा बड़ा भाई तुम्हारे साथ नहीं आया। तभी रेवड़ चराने में तुम्हें इतनी तकलीफ़ हुई है। अब देखो मैं रेवड़ संभालता हू। और तुम एक अच्छी नन्ही लड़की की तरह मेरे पीछे चली आओ। मैं थका हुआ हूँ। मुझे बहुत दूर जाना है। सूर्य अस्त होने को है। कितनी दूर है तुम्हारा गाँव? यह हम लौटकर किधर जा रहे हैं?"

चरवाही ने हँसते हुए कहा, "गाँव तो तुम पीछे छोड़ आए थे। इसलिए लौटकर जा रहे हो। देखो न, इस घाटी के समीप (उँगली उठाकर) वह हमारा गाँव।"

"क्या नाम है?"

चरवाही ने शीघ्रता से उत्तर दिया—"सारू।"

राही ने चरवाही की ओर देखकर कहा—"मैं कहने को था कि तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा?—मेरा नाम आँगी है।" आँगी ने रुकते-रुकते जवाब दिया, "तुम कहाँ से आ रहे हो?"

राही ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। जोर-जोर से रेवड़ को आवाजें देने लगा।

"हुश हा हा नीलती हा, आँगी हा, विली हा।"

आँगी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। "अच्छा तो मानो मैं एक बछिया हूँ। ओ हो, मैं हँसते हँसते मर जाऊँगी। यह राही कितना अजीब है। हा हा, तुम रेवड़ को वश में नहीं रख सकते। इधर लाओ सोटा।"

और चरवाही ने हँसते हँसते राही से सोटा छीन लिया। राही को

सारू गाँव बहुत पसन्द आया, बस कोई बीस-पच्चीस घर थे—सफेद मिट्टी से पुते हुए, नाशपातियों, केलों और सेवों के वृक्षों से घिरे हुए। सेव के वृक्षों में फूल आए हुए थे, कच्ची हरी नाशपातियाँ लटक रही थीं और श्वेत मकई के पौधों में हरे भुट्टे लटके हुए थे। केलों के एक बड़े झुण्ड की गोद में गुनगुनाता हुआ नीला झरना था और उससे परे एक छोटा-सा मैदान था जिसके बीच में मनू का लम्बा वृक्ष अपनी शाखाएँ फैलाए खड़ा था। उसकी छाया इतनी लम्बी हो गई थी कि दूर नीचे बहती हुई नदी के तट पर पहुँच रही थी। छोटी-सी नदी किसी नाज़ुक पतली-सी नागिन की भांति बल खाती हुई उत्तर-पूर्व के हिमाच्छादित पर्वतों से आ रही थी और डूबते हुए सूरज के पीछे-पीछे भाग रही थी। दृष्टि की सीमा पर वह दो पर्वतों के पतले किनारों से गुज़रती हुई प्रतीत होती थी। जहाँ अब सूरज चमक रहा था उसके परे राही का देश था वह वहाँ कब लौटकर जायगा ? क्या वह कभी लौटकर जा सकेगा ? यहाँ कितनी शान्ति है। शान्ति, जीवन और मृत्यु तीनों ने मिलकर यह सुन्दर घाटी बना डाली है। सहसा उसकी आँखों के सामने रेलगाड़ी के घूमते हुए पहिए उछलने लगे। यह कैसा कोलाहल है ? यह मनुष्य मृत्यु से भी अधिक निस्तब्धता से क्यों इतना डरते हैं ? हर समय शोर मचाते हैं, गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते हैं, किसलिए ? यहाँ कितनी शान्ति है, कितना सौन्दर्य और सुख है।

नीचे पगडण्डी पर नदी के किनारे से आँगी किसी निडर हरिणी की भांति पग उठाती हुई चली आ रही थी। कन्धे पर पतली-सी सोटी थी, होठों पर एक अर्थहीन-सा गीत। पाँव नंगे थे परन्तु चाल में नृत्य की धमक-सी थी। मुसाफ़िर ने अपनी पुस्तक बन्द कर दी और आंगी की ओर देखते हुए सोचने लगा—क्या ही अच्छा होता यदि वह चित्रकार होता। कितना सुन्दर है! कितना मनोहर दृश्य है। आंगी की सुडौल परन्तु मज़बूत बाहें, उसकी कमर...........। अथवा वह मूर्तिकार ही होता। संसार में किसी की इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं,

नहीं तो वह एक मूर्ति बनाता जिसे देखकर यूनानी मूर्तिकार भी दंग रह जाते।' इतने में आँगी ने उसे देख लिया। अजब बात है। वह क्यों ठिठक कर खड़ी हो गई है। उसके होठों पर अर्थहीन गीत क्यों रुक गया है? वह अपनी सोटी से धरती पर क्या लिख रही है—अनपढ़ आँगी। राही ने ज़ोर से आवाज़ दी—"आँगी!"

आँगी ने अवश्य सुन लिया है, किन्तु उसने उत्तर क्यों नहीं दिया? वह अब ऊपर चढ़ रही है, घाटी के पेचदार रास्ते से गुज़रती हुई इधर आ रही है। किन्तु अब उसकी चाल में अन्तर है। बाहें अब बेपरवाही से नहीं हिल रही हैं और गर्दन एक ओर को झुक गई है। वह अब एक नया चित्र है, एक नई मूर्ति है। वह वनदेवी थी तो यह वनकन्या है। इस मूर्ति की छटा निराली है। इस चित्र का रंग नया है। इस गीत की लय अनोखी है। काश! वह संगीतज्ञ ही होता!

आँगी घाटी पर चढ़ आई। वह राही के निकट बैठ गई और सोटी को हरी दूब पर रखकर सुस्ताने लगी। राही उसकी लट की ओर देखने लगा जो आँगी के चेहरे पर उतर आई थी। सहसा आँगी बोल उठी—"तुम वापिस कब जाओगे राही? जब तुम अपना नाम नहीं बताते तो फिर मैं तुम्हें राही ही कहूँगी। ठीक है न?"

राही ने पुस्तक के पन्ने उलटते हुए कहा—"ठीक है, और फिर राही कोई इतना बुरा नाम भी नहीं। बात वास्तव में यह है आँगी, कि मैं यहाँ अपना स्वास्थ्य सुधारने आया हूँ। जब अच्छा हो जाऊँगा, चला जाऊँगा।"

आँगी नें बड़े चाव से पूछा—"किधर जाओगे?"

राही ने बहुत बेपरवाही से दायाँ हाथ उठाकर कहा—"इधर जाऊँगा।"

"तुम कहाँ से आये हो?"

इस बार राही ने दूसरा हाथ फैलाकर कहा—"उधर से आया हूँ।"

आँगी की आँखें विशेषरूप से चमक उठीं। रुकते-रुकते कहने लगी—"राही! तुम कितने अजीब हो।"

और राही मन में सोचने लगा, 'क्या मैं वास्तव में अजीब हूँ? क्या यह दृश्य अनोखा नहीं? यह स्वप्न जैसी निस्तब्धता, यह मृत्यु जैसा जीवन, यह आँगी के चेहरे पर बल खाती हुई लट, क्या यह सब अजीब नहीं? आंगी का कुर्ता जगह जगह से फटा हुआ है और उसमें दर्जनों थेगलियां लगी हुई हैं। किन्तु वह किस शान से गर्दन ऊँची किये नदी की ओर देख रही है, जिसके पानी का रंग उसकी आंखों की भांति नीला है। क्या यह अजीब बात नही है? आंगी के हाथ कितने मजबूत दिखाई पड़ते हैं। लम्बी, छरेरी, मज़बूत उँगलियां जो हल की हत्थी पर जोर से जम जाती होंगी। इन कलाइयों ने कदाचित कभी चूड़ियों की खनक नहीं सुनी। कितनी अजीब बात है! परन्तु स्वयं मेरे हाथ औरतों जैसे हैं और एक चाकू से अपना क़लम बनाने में इतना समय लगाना पड़ता है जितना आंगी को आधे खेत में हल चलाने के लिये।

कई दिनों के पश्चात् राही की आंगी से भेंट हुई। उसने कहा—"आंगी तुम्हें इतने दिनों से नहीं देखा।"

आंगी ने उत्तर दिया, "मैं समझती हूँ कि तुम......इतने दिन कहाँ ग़ायब रहे? अब......बहुत दिन हुए तुमने अपनी वह तारों वाली बांसुरी (वायलिन) नहीं सुनाई। अभी परसों ही की बात है कि हम सब मन्नू के नीचे बैठे हुए फ़ीरोज़ से अलग़ोज़ा सुन रहे थ। तुम्हें पता है न, वह कितना अच्छा अलग़ोज़ा बजाता है। किरन कहने लगी पता नहीं क्यों आजकल राही दिखाई नहीं देता। उससे उसकी तारों वाली बांसुरी बजाने को कहते। क्यों?" इतना कहकर आंगी ने राही की ओर देखा।

राही की उँगलियाँ बेचैन हो गईं। उसने अपना हाथ आंगी के हाथ के इतना पास रख दिया कि एक की उँगलियाँ दूसरे की

उँगलियों को छू रही थीं। वह धीरे से बोला—"हाँ ठीक है। मैं आजकल लम्बी-लम्बी सैरें करने के लिये गांव से बहुत दूर निकल जाता हूँ, कभी-कभी उन सनोवरों के घने जंगलों में चला जाता हूँ।"

"तुम्हारा अकेला जी कैसे लगता होगा?"

"अकेला तो नहीं होता, कभी कोई किताब ले जाता हूँ, कभी कुछ लिखता हूँ, कभी अपनी तारों वाली बाँसुरी बजाता हूँ।"

आँगी ने हैरानी से राही की ओर देखा—"राही तुम कितने अजीब हो!"—उसकी वाणी में शहद जैसी मिठास थी।

बरसात के आखिरी दिनों में मक्की की फ़सल पक गई, सारू गाँव वालों ने मन्नू के वृक्ष के आसपास बड़े-बड़े खलिहान लगाए, मक्की के खलिहान और पीली-पीली घास के ढेर। मन्नू के पास ही तीन-चार स्थानों पर जंगली घास को काटकर गोलाकार जगह बनाई, उन्हें गोबर से लीप दिया, फिर उन पर खड़िया मिट्टी फेर दी। अब वहाँ मक्की के भुट्टों के ढेर लगाए और उन पर बैलों को चक्कर दे देकर चलाया ताकि दाने भुट्टों से अलग हो जायें। कुछ भुट्टे तो इसी तरह बिल्कुल साफ़ हो गए परन्तु बहुत से भुट्टे बड़े कड़ियल निकले और बैलों के पाँव तले रौंदे जाने पर भी मक्की के दानों को अपने तन से अलग न होने दिया। फिर सारू गाँव के किसानों ने टोलियाँ बनाईं। लोग चाँदनी रातों में इकट्ठे होकर खलिहान में बैठे हुए हैं और भुट्टों से दाने अलग कर रहे हैं। नीचे बहती हुई नदी का धीमा शोर है, मन्नू की डालियों में चाँद अटक गया है और उस उदास रागिनी को सुन रहा है जो नौजवान किसान, उनकी माताएँ और बहनें और पत्नियां गा रही हैं। फिर वे अकस्मात् चुप हो जाते हैं, चुपचाप मक्की के दानों को अलग कर रहे हैं, हवा के बहुत ही हल्के-हल्के झोंके आते हैं और मन्नू का सारा वृक्ष सांसें लेता हुआ प्रतीत होता है। आग तापता हुआ कोई बूढ़ा किसान धीरे से कह उठता है 'और गाओ बेटो, और गाओ।' फिर वह स्वयं ही कोई पुराना गीत आरम्भ कर देता है।

उसे अपनी बीती हुई जवानी की लहरें याद आ रही हैं। लाल-लाल लपटों की चमक उसकी आँसुओं से भरी हुई आँखों में कम्पित हो उठती है। गाते-गाते गीत के बोल उसके मुँह में रुक-रुक जाते हैं। अब वह चुप हो जाता है और आग के दहकते हुए कोयलों पर मक्की का एक भुट्टा भून रहा है। युवती चरवाहियाँ आपस में कानाफूसी करती हुई अकस्मात् हँस पड़ती हैं। नौजवान चरवाहे उन्हें कनखियों से देख कर मुस्कराते हैं। फिर कोई विरह गीत व्योम में गूँज उठता है। युवती चरवाहियों की पतली-पतली आवाजें भी उसमें मिल जाती हैं। प्रतीत होता है किसी बड़े मन्दिर में बैठे अपने आराध्य देव की आराधना कर रहे हैं। ये मक्की के दाने किसी माला के असंख्य दाने हैं और यह बूढ़ा किसान एक बूढ़ा पुजारी है। इस आग में कपूर और धूप जल रही है जिसका धुंआ उठकर सारे मन्दिर को पवित्र कर रहा है। ये शुद्ध आत्माएं हैं। यहां अमर शान्ति है और प्रकृति का पवित्र प्रसाद।

सारू ग्रामवासी राही को एक प्रिय अतिथि ही नहीं वरन् अपना भाई समझते थे और उसे अपनी खुशियों म शरीक करते थे। भोले-भाले किसान, अल्हड़ चरवाहियाँ, नन्हे-मुन्ने बच्चे उसके चारों ओर एकत्र हो जाते—'राही अपनी तारों वाली वांसुरी सुनाओ, राही अपनी तारों वाली वांसुरी सुनाओ।' आँगी अपना एक हाथ उसके कन्धे पर रख देती और दूसरे हाथ से उसकी उँगलियों में मिजराव पकड़ा देती— "लो वजाओ राही, अपनी तारों वाली वांसुरी वजाओ।" या फिर खलिहालों की लम्बी-लम्बी छाया में कहानी सुनाने की फ़रमाइश करती—उस दुनिया की कहानी जहाँ लम्बे-लम्बे मैदान हैं, बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं, मीलों तक फैले हुए शहर हैं। जहाँ लोहे के तारों पर लकड़ी के मकान पंक्तियाँ बनाये भागे जा रहे हैं। कहीं से कोई एक बटन दबा देता है और लाखों बत्तियाँ जल उठती हैं। आकाश पर उड़न खटोले घूमते हैं और नीचे बाजारों में परियाँ मन्थर-गति से घूमती फिरती हैं जिन — तितलियों के पंखों से बनाए गए हैं।

इसी तरह मक्की के खलिहानों में कई चाँदनी रातें बीत गईं। एक रात राही ने पहले खलिहान में फ़ीरोज़ का अलग़ोज़ा सुनते हुए अनुभव किया कि आंगी वहां नहीं है। दूसरे खलिहान में मक्की के भुट्टों से अलग करते हुए उसने इधर-उधर देखा, मगर आंगी कहीं दिखाई न दी। तीसरे खलिहान में राही ने एक मनोरंजक कहानी सुनाई जो शहरों के जीवन से सम्बन्धित थी। उसकी निगाहें आंगी को ढूंढ़ती रहीं परन्तु निष्फल। चौथे खलिहान में उसने अपना वायलिन उठाया और एक दर्दभरी करुण रागिनी छेड़ी। अन्य खलिहानों से उठकर सारू गांव के निवासी चौथे खलिहान में एकत्र हो गए और राही की वायलिन सुनने लगे—उनके चेहरों पर प्रसन्नता और अचम्भे के भाव आगए। परन्तु आंगी कहां थी ? अन्त में राही ने पूछ ही लिया।

एक युवक किसान ने बेपरवाही से कहा—"वह खलिहान के उस ओर बैठी है। अभी थोड़ा समय हुआ अपनी सहेलियों में बैठी गा रही थी कि फ़ीरोज़ की बहन ने उससे न जाने क्या कहा। क्यों दिलशाद, तुमने क्या कहा कि वह उठ कर चली गई ? अब वह अकेली बैठी भुट्टों से दाने अलग कर रही होगी। कौन मनाता फिरे—"किरण, तू क्यों नहीं मना लाती जाकर उसे ?"

किरण हँस पड़ी, किन्तु उसने कोई उत्तर न दिया।

खलिहान के दूसरी ओर राही ने देखा कि कुछ मक्की के भुट्टे धरती पर पड़े हैं और उनके निकट खलिहान का सहारा लिये हुए आंगी अधलेटी पड़ी है—आँखें भीगी हुई हैं और सिर के चारों ओर चांद की किरणों ने एक कुण्डल बना दिया है।

"आंगी !"

"आंगी !"

"आंगी !"

राही आंगी पर झुक गया। उसने आंगी के सिर को अपनी बाहों में ले लिया। "क्या बात है आंगी ?"

आँगी उठ बैठी। उसने धीरे से अपने को राही की भुजाओं से अलग किया और मक्की के दाने अलग करने लगी। कुछ क्षण पश्चात् उसने रुंधे हुए कण्ठ से कहा—"राही, तुम मुझे यहाँ से ले चलो।" इतना कहकर उसने अपना सिर झुका लिया और चुपचाप रोने लगी।

राही चुपचाप, भावहीन-सा, मक्की के दाने अलग करता रहा। उसने आँगी के आँसू नहीं पोछे, उसे प्यार नहीं किया। सहसा एक पक्षी काले-काले पंख फैलाए हुए तीर की भाँति सामने से निकल गया। खलिहान के ऊपर दो तीन तारे चमक रहे थे—आँगी के आँसुओं की भाँति—और खलिहान के दूसरी ओर स्त्रियाँ दुल्हिन की ससुराल के लिये विदाई का गीत गा रही थीं। राही की निगाहें पहाड़ों से परे, सनोवरों के जंगलों को चीरकर लम्बे-चौड़े मैदानों को ढूँढ़ने लगीं, जहाँ उसका देश था। उसकी निगाहों के सामने रेलगाड़ी के पहिये उछलने लगे।

राही परमात्मा का कोटि-कोटि धन्यवाद करता है कि वह अपनी दुनियाँ में लौट आया—अपनी सभ्यता की दुनियाँ में। कभी विचार करता है, 'कदाचित् मैंने भूल की।' कभी-कभी अपने मित्रों में बैठे-बैठे, हँसी-मज़ाक करते-करते उसके कानों में अजीब-अजीब शब्द गूंजने लगते हैं—'राही तुम कितने अजीब हो, राही!' यह आवाज़ें गूंजती रहती हैं, यहाँ तक कि उसके होठों से मुस्कान लुप्त हो जाती है और वह सोचता है—'कदाचित किसी झरने पर रेवड़ को पानी पिलाती हुई एक भोली बाला अब भी उसकी प्रतीक्षा कर रही है। उसके पाँव नंगे हैं, उसकी निगाहें उदास हैं, उसके बालों में सेब के फूलों का गुच्छा है।

आँगी!

: ७ :

आता है याद मुझको

सन् १९२० की वसन्त ऋतु में मैंने अपने जीवन के सातवें वर्ष में पांव रखा। उन दिनों हम लोग अँगपुर की घाटी में रहते थे जिसकी गिनती कश्मीर की सुन्दरतम घाटियों में होती है। लेकिन उन दिनों मुझे उस घाटी में कोई विशेष बात नज़र न आती थी। इसके बहुत से कारण हो सकते हैं—हम यहां नये-नये आए थे—मैं और मेरे बड़े भाई रामजी और पिता जी और कामिनी मौसी जिनकी आयु साठ से भी अधिक थी। फिर यहां स्कूल में लड़के मुझे एक अमीर आदमी का लड़का समझकर घृणा करते थे और अवसर पाकर मुझे पीट भी दिया करते थे। इसके अतिरिक्त मैं स्कूल में सबसे अधिक मन्दबुद्धि था और इस कारण मेरे मास्टर भी मुझ से अप्रसन्न रहते थे। कोई स्नेह करने वाला या दुःख वंटाने वाला न था जो एक सात साल के लड़के से सहानुभूति प्रगट करता। माँ जी पिता जी के मन बहलाव में लगी रहतीं, कामिनी मौसी हर समय मेरा गला टटोलती रहतीं—'आज तूने फिर खट्टे अलूचे खाए हैं, ठहर तो सही' और फिर वह मेरा गला दबोचकर मुझे अपनी गोद में लिटा कर मेरे मुँह में जबरदस्ती जोशान्दा डालतीं, जो इस घाटी में उगे हुए वनफशे, हरे चिरायते, संवलू की जड़ों, कई कड़वी चीजों और न जाने किस अला-बला से तैयार किया गया था—ओह! कितना कड़वा

खट्टा और अस्वादिष्ट होता था वह जोशान्दा ! और जब कामिनी मौसी मेरी नाक पकड़ कर मुझे पृथ्वी पर गिरा देतीं या अपनी गोद में डाल लेतीं और मैं जोशान्दे को गले से नीचे न उतारने की कोशिश में गुल-गुल करता और इस असफल प्रयत्न में मौसी कामिनी का अँगूठा चबाने में सफल हो जाता, तो जोशान्दा पी लेने के उपरान्त भी चपताया जाता। इस संसार में न्याय कहां है ? एक सात साल के बच्चे की सुनने वाला कोई नहीं।

इन्हीं बातों से चिढ़कर एक दिन मैंने निर्णय किया कि अब कभी स्कूल न जाऊँगा, चाहें कुछ भी हो। आखिर ऐसा भी क्या है ! हमारा भी इस दुनिया में रहने का और अपनी-सी करने का अधिकार है। यह निर्णय करते ही मैंने जल्दी से स्लेट, कापी और किताब को बस्ते में रखा और पट्टी को बग़ल में दबाकर स्कूल की ओर चल दिया। थोड़ी दूर चलकर जब घर बटंगों के झुण्ड की ओट में हो गया तो मैंने स्कूल का मार्ग छोड़कर दूसरी पगडण्डी पर चलना प्रारम्भ किया जो कि घाटी से नीचे को नदी के किनारे-किनारे धान के खेतों तक जाती थी, जहाँ पनचक्कियाँ थीं, निर्झर थे, वनस्पतियाँ थीं, जहाँ चरवाहे और चर-वाहियाँ दिन भर रेवड़ चराते थे।

स्कूल और घर से भागने का यह पहला अवसर था। इस कारण कुछ खुश-खुश, कुछ सहमा-सहमा, कुछ आज़ाद-सा, कुछ उदास-सा चला जा रहा था और मन इस उधेड़-बुन में लगा हुआ था कि इस बस्ते को कहां रखा जाए, इसे लिये-लिये फिरना तो निपट मूर्खता होगी। कोई देख लेगा तो पकड़कर सीधा स्कूल ले जायेगा या घर। फिर क्या हो ? इस बस्ते को कहां छिपाऊँ ?

जब घाटी के निचले भाग में पहुँच गया तो मैंने अपने बस्ते को और पट्टी को दाख के एक बड़े झुण्ड में रख दिया। यहां लम्बी-लम्बी घास उगी थी और पृथ्वी पर जो बेलें फैली हुई थीं उन पर नीले-नीले और हल्के गुलाबी रंग के फूल खिले हुए थे जो चौड़े-चौड़े पत्तों के बीच ग्रामो-

फ़ोन के उस भोंपू की भांति दिखाई पड़ते थे जिसके सामने एक कुत्ता बैठा होता है। सहसा मुझे एक सुन्दर गिलहरी दिखाई पड़ी और मैं उसे पकड़ने की चेष्टा में दाख की बेल पर, जो मन्नू के वृक्ष पर बल खाती चली गई थी चढ़ता गया। फिर गिलहरी मुझे चकमा देकर उन चौड़े-चौड़े पत्तों में छिप गई और मैं दाख के उन गुच्छों को टटोलने लगा जिनके दाने हरे रंग के नगीनों की भांति हरे और उतने ही कड़े थे। दाख के एक-दो दाने मैंने तोड़कर खाए, बड़े बकबके और कड़वे थे और बीज जो चबाया तो कुनीन की गोली की तरह कड़वा लगा। मैं निराश होकर बेल से नीचे उतर आया। मेरी कमीज़ एक टहनी से अटक कर फट गई थी और पाजामे पर रगड़ से दो बड़े-बड़े भूरे धब्बे पड़ गये थे। ख़ैर नीचे उतर आया, जम्हाई ली—उफ़ कितनी कटु और कठोर है यह दुनिया। उन दिनों मैं कवि न था, कहानीकार न था, पढ़ा लिखा न था। उन दिनों भोर में मनोहरता न थी, वायु में आल्हाद न था, घास म सोंधी-सी सुगन्ध न थी। फूल तोड़ने के लिये थे, गिलहरियां पकड़ने के लिये, तितलियां पीछा किये जाने के लिए, स्त्रियां जोशान्दा पिलाने और नाक पकड़ने और अंगूठा चबाने के लिये, पुरुष चपत लगाने और कान पकड़कर स्कूल ले जाने के लिए थे। इस कारण मैंने ज़ोर की जम्हाई ली और सोचा—अब क्या करूँ, कहां जाऊँ? अब न घर जा सकता हूँ न स्कूल। मैंने सोचा, क्यों न मैं इन पहाड़ों से परे चला जाऊँ, जहां अच्छे लोग निवास करते हैं, जहां राजकुमार और राज-कुमारियां रहती हैं, जहां जादूगर महल बनाते हैं और परीज़ादे हंस के पंखों पर बैठकर नीली झीलें पार करते हैं।—हां बस ठीक है।

यह संकल्प करके मैं दाख के झुण्ड से निकला और घाटी की ढलान की ओर बढ़ा और ग्रामोफ़ोन के भोंपुओं को अपने पांव से कुचलता गया। जूता उतार कर मैंने अपने बस्ते के पास रख दिया क्योंकि अब नरम-नरम घास पर नंगे पांव चलने में आनन्द आ रहा था। मैंने ज़ोर से सीटी बजाना आरम्भ किया—कामिनी मौसी इस

समय मुझे सीटी बजाते देखतीं तो क्या करतीं—मैंने इधर-उधर देखा परन्तु कामिनी मौसी कहीं दिखाई न दीं। 'ओह मुझे क्या परवाह है'—मैंने फिर निश्चिन्त होकर सीटी बजानी शुरू कर दी। सहसा निकट से किसी ने ज़ोर से डाँटा और मैं भय से उछलकर भागा। फिर मुड़कर देखा तो यह कामिनी मौसी न थीं, एक नटखट माहमारो था जो अब हवा में पँख खोले, पँख बन्द किये, डुबकियां खाता चला जा रहा था। दुष्ट ने मुझे यूं ही डरा दिया। मैंने पृथ्वी से कंकर उठा कर उसे मारना शुरू किया, परन्तु एक कंकर भी उसे न लगा और वह चीख़ता हुआ, मज़े से उड़ता हुआ नदी की ओर चला गया—जाने दो बच्चा जी को। जब हम जादूगर से जादू की छड़ी छीनकर लाएँगे तब इस शैतान माहीमार से पूछेंगे कि इस तरह राह चलते लोगों के सिर पर चीख़ने का क्या मतलब है!

ढलान के अन्त में, घाटी में दो निर्झर बह रहे थे। यहाँ प्रायः गाँव की लड़कियों का झुरमुट रहता था। मैंने सोचा यहाँ घूमते हुए किसी ने मुझे देख लिया तो रिपोर्ट हो जायगी। इसलिए मैं नीचे की ओर जाते-जाते रुक गया, और फिर दिशा बदलकर घाटी के बीच संबलुओं की झाड़ों और काव के वृक्षों में अपने को छिपाता हुआ चलने लगा। नीचे में उन दो चश्मों को देख सकता था जहाँ से लड़कियां गागर भर-भर कर ले जा रही थीं। परन्तु मेरा रास्ता उनके रास्ते से अलग था और दोनों रास्ते मानो एक-दूसरे के समानान्तर थे। जी में आया कि दो-चार पत्थर उठाकर दे मारूं और फोड़ डालूं लड़कियों की गागरें। पत्थर लगते ही तड़ाख़ से गागरें फूट जाएँगी और झट से सारा पानी लड़कियों के वस्त्रों को भिगोता हुआ नीचे गिर जायगा। फिर सोचा अगर किसी ने मुझे पकड़ लियः तो ?—और मुझे अभी दूर, बहुत दूर परियों के देश जाना है जिसकी कहानी मुझे प्रायः रात को कामिनी मौसी सुनाया करती हैं। और जो उनके कहे अनुसार पर्वत श्रेणी के दूसरी ओर स्थित है। मैं सोचकर रुक गया। झाड़ियों

फ़ोन के उस भौंपू की भांति दिखाई पड़ते थे जिसके सामने एक कुत्ता बैठा होता है। सहसा मुझे एक सुन्दर गिलहरी दिखाई पड़ी और मैं उसे पकड़ने की चेष्टा में दाख की बेल पर, जो मन्नू के वृक्ष पर बल खाती चली गई थी चढ़ता गया। फिर गिलहरी मुझे चकमा देकर उन चौड़े-चौड़े पत्तों में छिप गई और मैं दाख के उन गुच्छों को टटोलने लगा जिनके दाने हरे रंग के नगीनों की भांति हरे और उतने ही कड़े थे। दाख के एक-दो दाने मैंने तोड़कर खाए, बड़े बकबके और कड़वे थे और बीज जो चबाया तो कुनीन की गोली की तरह कड़वा लगा। मैं निराश होकर बेल से नीचे उतर आया। मेरी कमीज़ एक टहनी से अटक कर फट गई थी और पाजामे पर रगड़ से दो बड़े-बड़े भूरे धब्बे पड़ गये थे। ख़ैर नीचे उतर आया, जम्हाई ली—उफ़ कितनी कटु और कठोर है यह दुनिया। उन दिनों मैं कवि न था, कहानीकार न था, पढ़ा लिखा न था। उन दिनों भोर में मनोहरता न थी, वायु में आल्हाद न था, घास में सौंधी-सी सुगन्ध न थी। फूल तोड़ने के लिये थे, गिलहरियां पकड़ने के लिये, तितलियां पीछा किये जाने के लिए, स्त्रियां जोशान्दा पिलाने और नाक पकड़ने और अंगूठा चबाने के लिये, पुरुष चपत लगाने और कान पकड़कर स्कूल ले जाने के लिए थे। इस कारण मैंने ज़ोर की जम्हाई ली और सोचा—अब क्या करूँ, कहां जाऊँ? अब न घर जा सकता हूँ न स्कूल। मैंने सोचा, क्यों न मैं इन पहाड़ों से परे चला जाऊँ, जहां अच्छे लोग निवास करते हैं, जहां राजकुमार और राजकुमारियां रहती हैं, जहां जादूगर महल बनाते हैं और परीज़ादे हंस के पंखों पर बैठकर नीली झीलें पार करते हैं।—हां बस ठीक है।

यह संकल्प करके मैं दाख के झुण्ड से निकला और घाटी की ढलान की ओर बढ़ा और ग्रामोफ़ोन के भोंपुओं को अपने पांव से कुचलता गया। जूता उतार कर मैंने अपने बस्ते के पास रख दिया क्योंकि अब नरम-नरम घास पर नंगे पांव चलने में आनन्द आ रहा था। मैंने ज़ोर से सीटी बजाना आरम्भ किया—कामिनी मौसी इस

समय मुझे सीटी बजाते देखतीं तो क्या करतीं—मैंने इधर-उधर देखा परन्तु कामिनी मौसी कहीं दिखाई न दीं। 'ओह मुझे क्या परवाह है'—मैंने फिर निश्चिन्त होकर सीटी बजानी शुरू कर दी। सहसा निकट से किसी ने जोर से डाँटा और मैं भय से उछलकर भागा। फिर मुड़कर देखा तो यह कामिनी मौसी न थीं, एक नटखट माहमारो था जो अब हवा में पँख खोले, पँख बन्द किये, डुबकियां खाता चला जा रहा था। दुष्ट ने मुझे यूंही डरा दिया। मैंने पृथ्वी से कंकर उठा कर उसे मारना शुरू किया, परन्तु एक कंकर भी उसे न लगा और वह चीख़ता हुआ, मजे से उड़ता हुआ नदी की ओर चला गया—जाने दो बच्चा जी को। जब हम जादूगर से जादू की छड़ी छीनकर लाएंगे तब इस शैतान माहीमार से पूछेंगे कि इस तरह राह चलते लोगों के सिर पर चीख़ने का क्या मतलब है !

ढलान के अन्त में, घाटी में दो निर्झर बह रहे थे। यहाँ प्रायः गाँव की लड़कियों का झुरमुट रहता था। मैंने सोचा यहाँ घूमते हुए किसी ने मुझे देख लिया तो रिपोर्ट हो जायगी। इसलिए मैं नीचे की ओर जाते-जाते रुक गया, और फिर दिशा बदलकर घाटी के बीच संबलुओं की झाड़ों और काव के वृक्षों में अपने को छिपाता हुआ चलने लगा। नीचे मैं उन दो चश्मों को देख सकता था जहाँ से लड़कियां गागर भर-भर कर ले जा रही थीं। परन्तु मेरा रास्ता उनके रास्ते से अलग था और दोनों रास्ते मानो एक-दूसरे के समानान्तर थे। जी में आया कि दो-चार पत्थर उठाकर दे मारूं और फोड़ डालूं लड़कियों की गागरें। पत्थर लगते ही तड़ाख़ से गागरें फूट जाएंगी और झट से सारा पानी लड़कियों के वस्त्रों को भिगोता हुआ नीचे गिर जायगा। फिर सोचा अगर किसी ने मुझे पकड़ लियः तो ?—और मुझे अभी दूर, बहुत दूर परियों के देश जाना है जिसकी कहानी मुझे प्रायः रात को कामिनी मौसी सुनाया करती हैं। और जो उनके कहे पर्वत श्रेणी के दूसरी ओर स्थित है। मैं सोचकर रुक गया।

में दो गुलाटें खुशी से चीखी और फुर्र से उड़ गईं। एक ओर गिलहरी दिखाई दी जो काव के एक पतले से ठूंठ से लगी मुझे पीछा करने की चुनौती दे रही थी। परन्तु अब तो मेरे पाजामे के पाँयचे भी ओस से गीले और कांटों से तार तार हो चुके थे। इसलिये मैंने आगे बढ़ जाना ही उचित समझा। आगे बढ़ा तो देखा कि सामने एक सुन्दर, मोटा-ताजा चितकबरा चकोर मजे से टहलता जा रहा है। रास्ते में ठीक सामने उसे देखकर मैं रुक गया और एक तने की ओट में खड़ा हो कर सोचने लगा कि इसे किस तरह पकड़ा जाए। फिर सारे दाँव सोच-कर मैं आगे बढ़ा। धीरे-धीरे घुटनों के बल चलने लगा कि आहट न हो। हर एक क्षण मुझे उसके निकट ला रहा था। सहसा चकोर ने गर्दन मोड़कर मुझे देख लिया। मेरा मन धक-धक करने लगा। उसने अपने पंखों को तनिक खोला। मैंने निराश होकर सोचा कि अब यह उड़ा। परन्तु मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही जब मह मुझे देखकर पहले की तरह अपनी चाल चलता रहा। मैंने सोचा, अवश्य ही यह चकोर किसी का पालतू है और यहाँ उड़ आया है। या फिर यह अभी बच्चा है जो उड़ नहीं सकता। सम्भव है कि यह घायल ही हो—किसी लड़के ने गोफिया मारकर इसका पर तोड़ दिया हो। मैंने अपनी गति तीव्र कर दी। देखा-देखी चकोर ने भी अपनी चाल तेज़ कर दी। फिर मैंने घुटनों के बल चलना छोड़ दिया और सीधा उठकर उसके पीछे भागा और ठीक उस समय जब मैं उसे दबोचने को था, चकोर ने अपने पंख फैलाए और बड़ी निश्चिन्तता से उड़ता हुआ हवा में चक्कर लगाने लगा और मैं घबराहट में एक पेड़ से टकराया और नीलाधारी की झाड़ी में जा गिरा और वहाँ से लुढ़ककर घास पर जो फिसला तो बेर के एक बड़े झाड़ के नीचे जाकर रुका। यहाँ पर एक लड़का चाकू से जमीन खोद रहा था। मेरी हास्यजनक आकृति देखकर वह उठ खड़ा हुआ और अपने कूल्हों पर दोनों हाथ रख कर क़हक़हे लगाने लगा। मैं शीघ्रता से कपड़े झाड़ कर उठा। यद्यपि मेरे पाँव और बाहें कांटों से

घायल हो गये थे, मैं इस पर भी अपनी मुट्ठियाँ भींचकर उसकी ओर वढ़ा और उससे पूछा "क्यों हँसते हो जी ?"

"हो...हो...हो" उसने हँसते कहा, "लगता है तुम स्कूल से भागो हो ?"

"हाँ" मैंने मुट्ठियाँ भींचकर उत्तर दिया, "क्या तुम्हारे वाप का स्कूल है ?"

"हो...हो...हो" वह और भी जोर से हँसने लगा और कहने लगा—"मेरे वाप का स्कूल होता तो तुम वहाँ से भाग सकते थे ? मेरे वाप के पास पचास घोड़े हैं और आज तक एक घोड़ा भी नहीं भागा।"

"मैं घोड़ा नहीं हूँ।" मैंने क्रोध से कहा।

"हो...हो...हो" वह चीखा और फिर उसने आगे वढ़कर एक दम मुझे भुजाओं से पकड़ लिया और अपने समीप खींचकर वोला—"जानते हो, मैं चाकू से धरती क्यों खोद रहा था ?"

"कोई खज़ाना होगा" मैंने वेपरवाई से कहा। परन्तु मेरी आवाज़ में तनिक सी उत्सुकता भी पाई जाती थी। उससे क्रुद्ध होने पर भी मैं इस छिपे हुए खज़ाने की ओर से किस प्रकार उदासीन रह सकता था ?

"खज़ाना नहीं है।" उसने निर्णयात्मक स्वर में हाथ झटक कर कहा।

"तो फिर जादू की पट्टी होगी ?"

"नहीं जादू की पट्टी भी नहीं है।"

"तो फिर क्या है मियाँजी ?"

"खूनी वूटी।"

"खूनी वूटी ?"

"हाँ, खूनी वूटी। कभी प्याज खाया है तुमने ?—वस खूनी वूटी ठीक प्याज जैसी होती है, परन्तु उसमें खून भरा होता है।"

"खून ? किसका खून ? किसी जिन का खून ?"

"नहीं, किसी जिन-विन या भूत का खून

न है ।" उसने उत्तर दिया और मेरे सारे शरीर में झुरझुरी दौड़ गई। आदमी के खून का क्या करते हैं ?" मैंने उससे पूछा।

"पीते हैं।"

"पीते हो ?" मैंने भयभीत होकर उससे पूछा।

"हां बड़े मज़े का होता है और मेरा बाप कहता है, जो लड़का इस खूनी बूटी का खून पी लेगा वह हवा में उड़ सकता है, ऊंचा, बहुत ऊंचा। उसे उड़न-खटोले की आवश्यकता नहीं रहती।"

"अरे वाह !" मैंने आवेश में ताली बजाई और उसका चाकू लेकर कहा—"लाओ मुझे धरती खोदने दो।"

"तुम परे हट जाओ," उसने क्रोध में आकर मझे धकेल दिया। "यह बूटी मेरी है, इसका खून मैं पिऊंगा।"

"नहीं, मैं पिऊंगा," मैंने कहा, "नहीं तो मैं तुम्हें यह जगह नहीं खोदने दूंगा।"

वह बोला "अच्छा तो हम बारी-बारी धरती खोदेंगे। जब बूटी निकल आएगी तो उसका आधा खून तुम पी लेना, आधा मैं भी पी लूंगा और फिर हम दोनों हवा में उड़ जाएंगे।"

मैंने खुशी से कहा, "और ऊपर से मास्टर के सिर पर मूत देंगे और दूर, बहुत दूर, परियों के देश में चलगे। कामिनी मौसी कहती थी..."

"तो तुम बंगले में रहते हो," उसने मेरी ओर ध्यान से देखते हुए कहा—उसके स्वर में घृणा का भाव था। मैंने लज्जित होकर कहा, "हां...और तुम कहां रहते हो ?"

"मैं उस ऊंचे पहाड़ पर रहता हूँ," वह बोला। "हमारा घर मिट्टी का है, दो-मंजिला है, तुम्हारा घर एक-मंजिला है। मेरे बाप के पास पचास घोड़े हैं। मेरा नाम अमजद है।"

खूनी बूटी के कारण मैं उससे लड़ाई मोल लेना न चाहता था। इसलिये मैंने इस घमण्डी की बातों का कोई उत्तर न दिया और चुप

हो रहा। अमजद और मैं बारी-बारी धरती खोदते रहे। घोंघे, छोटी-छोटी सीपियाँ, सफेद, पीले, हरे रंग के पत्थर खोद कर उनसे अपनी जेबें भरते रहे। आखिर में एक लम्बी सी जड़ के नीचे वह प्याज की गुठली-सी दिखाई दी और मैंने चिल्लाकर कहा, "खूनी बूटी !"

"हटो मुझे देखने दो, कहाँ है ?" अमजद चिल्लाया, और उसने मुझे परे धकेल दिया। "इधर लाओ चाकू। तुम इसे घायल कर दोगे और सारा खून गुठली से निकल कर मिट्टी में समा जाएगा—परे हटो !" वह बहुत ही सावधानी से उस गुठली के आस-पास की मिट्टी खोद रहा था।

आखिर वह भूरे रंग की गुठली जिसके चारों ओर मिट्टी लगी हुई थी, ठीक-ठाक बाहर निकल आई। अब वह अमजद की उँगलियों में लटक रही थी, उड़न-खटोले की भांति। अमजद धीरे-धीरे उसके ऊपर से मिट्टी उतारने लगा। मैंने अमजद से कहा, "इसे भली प्रकार थामे रहो, वरना यह उड़ जाएगी।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?" उसने मुझ से पूछा।

"मैं जानता हूँ।" मैंने कहा।

अमजद जब गुठली साफ़ कर चुका तो बोला, "अब इसका आधा हिस्सा कैसे होगा ?"

"मैं बताऊँ ? इसके बीच में चाकू से एक छेद कर दो और फिर इसे अँगूठे से बन्द कर दो और बूँद-बूँद करके मुँह में टपकाते जाओ—मेरे मुँह में, अपने मुँह में, बारी-बारी। लो अब जल्दी करो। मुझे उड़कर परियों के देश जाना है।"

अमजद ने चाकू से गुठली में छेद किया और वहाँ अँगूठा रख दिया। फिर उसने अपना मुँह खोलकर, छेद पर अँगूठे का दबाव तनिक हल्का कर दिया और 'आदमी' का खून अपने मुँह में टपकाने लगा।

तना आतुर था कि मेरा मुँह भी अनायास खुल गया, मानो वह बूँद रे ही मुँह में टपकने को थी।

परन्तु वह बूंद न टपकी।

अमजद ने अंगूठे को छेद पर से तनिक परे सरका दिया : फिर गौर परे सरकाया।

और परे सरकाया।

अरे !

गुठली से खून की बूंद फिर भी न टपकी।

फिर गुठली को शीघ्रता से चीरा गया। उसके टुकड़े-टुकड़े किये गए। परन्तु खून नाम-मात्र भी न निकला। बस प्याज़ की भांति छिलकों के परत ही परत थे। उसमें और कुछ न था। ज़रा सा चखा, कड़वा ज़हर था।

अमजद ने उसे लेकर नीचे फेंक दिया और फिर बोला, "यह गुठली कच्ची है। अभी इसमें खून पैदा ही नहीं हुआ।"

अमजद और मैं बहुत देर तक नदी में, तट के समीप बहुत देर तक तैरते रहे।

जब हम तैरते-तैरते थक जाते तो पानी से निकल कर रेत पर लेट जाते और सूर्य की गरम-गरम किरणों और रेत की तपती हुई सतह से अपने शरीर को गरम करते और किसी चौड़े पत्थर पर कानों को लगा कर उन में से पानी निकालने का प्रयत्न करते। यहाँ बहुत से लड़के लड़कियाँ एकत्र थे। छोटे-छोटे चरवाहे और चरवाहियाँ, बड़ी-बड़ी भैंसों को इतनी कुशलता से हांक रहे थे कि मुझे तो बार-बार अचम्भा होता था कि किस तरह यह भीम-काय पशु जो पास ही घास पर चर रहे थे, इन नन्हे-मुन्ने चरवाहों के रौब में आकर उनके हर संकेत को आदेश मान कर चुपचाप उसका पालन करते हैं।

मैं और अमजद रेत पर लेटे थे और अमजद के पास पारो लेटी

थी और पारो के पास दो तीन और लड़के-लड़कियाँ। और पारो के भूरे-भूरे बाल सूर्य की किरणों में गहरे सुनहरी हो गए थे और पारो मुझे बड़ी अच्छी लगी थी। नदी में तैरते समय हम दोनों एक-दूसरे के पास-पास तैरते रहे थे और एक-दूसरे पर पानी उछालते रहे थे और तैरते-तैरते हम दोनों पत्थर की उन सिलों पर उचक कर बैठ जाते थे जो नदी के तीव्र बहाव को हमारे तैरने के स्थान से पृथक् करती थी। वहाँ बैठ-बैठे मैंने पारो से कहा—"मैं नदी के तीव्र बहाव में तैर सकता हूँ।"

"झूठ!" वह बोली।

"मैं हवा में उड़ सकता हूँ।"

"उड़ कर दिखाओ," वह बोली।

मैंने कहा, "मैं परियों के देश जा रहा हूँ, मुझे कामिनी मौसी ने बताया है कि......"

पारो अपना निचला होंठ एक अजीब अदा से सिकोड़ कर बोली—"तुम बँगले में रहते हो न?"

"हाँ, मेरे बंगले में पीले गुलाब की एक बहुत बड़ी बेल है। तुम ने पीले गुलाब देखे हैं?"

"नहीं।" पारो बोली।

"अच्छा तो तुम्हें बहुत से पीले गुलाब दूंगा और एक हार बनाऊँगा तुम्हारे लिये।"

पारो अपनी बिखरी लटों से पानी निचोड़ते हुए बोली—"अच्छा तो हम तुम से ब्याह कर लेंगे। अमजद से नहीं करेंगे।"

"अमजद?" मैंने कहा, "अमजद तो बुद्धू है, वह तो स्कूल भी नहीं जाता......"

इतने में अमजद तैरता हुआ हमारे निकट आया और उसने हम दोनों को टांगों से पकड़कर पानी में घसीट लिया। हम फिर तैरने लगे। पानी की कुल्लियाँ एक-दूसरे पर करने लगे। हथेलियों में

कर उसे इस प्रकार उलीचले कि पानी गोलाकार रूप में एक ऊँचा
रा बनाता हुआ हवा में बिखर जाता। कभी-कभी हम धब-धब टांगें
ला कर नक़ली झरना गिराते और पानी की सतह को बिलोए हुए
ाग में परिणित कर देते।

अब हम सब रेत पर लेटे हुए धूप का आनन्द ले रहे थे। पारो
और मैं बिल्कुल पास-पास लेटे हुए थे परन्तु दुष्ट अमजद बीच में आकर
पारो के पास औंधा पड़ गया। उसकी ठोड़ी रेत में धँसी हुई थी।
काले खुरदरे बालों में कीचड़ और रेत भरा था और कान की लौंगों के
पास रेत में पानी से दो छोटे-छोटे गढ़े से बन हुए थे। वह अधखुले नत्रों
से कभी मुझे कभी पारो को देख लेता था।

मैंने कहा—"मैं और पारो ब्याह कर रहे हैं।" पारो खिलखिला
कर हँसी।

अमजद ने क्रोध से पारो की ओर देखा, फिर मेरी ओर।

मैंने कहा, "और पारो मेरे साथ परियों के देश जा रही है।"

अमजद की आंखों में मानो खूनी बूटी का खून उछलने लगा।
उसने रौद्र दृष्टि मुझ पर डाली। उसने अपनी उँगलियां रेत में गाड़ दीं
और अपनी मुट्ठियों में रेत भींच कर बोला, "यह सच है पारो ?"

पारो ने अपनी सुनहरी लट, जो उसके कपोलों पर लहरा रही थी,
अपने दांतों के बीच ले ली और चुपचाप हँसने लगी।

अमजद ने अपनी रेत से भरी मुट्ठियां उठाईं और वह उसी रेत
को मेरी आंखों में झोंकने को था कि नदी के तट से किसी ने आवाज़
दी—

"हो जरियो ! रुट्टी खागी नो ?"

सहसा भूख ने सबको आन दबोचा। अमजद की मुट्ठियों ने रेत
छोड़ दिया और हम सब नदी के किनारे मन्नू के वृक्ष के नीचे चले
गए। मकई की रोटी थी और गुंभार का साग था। प्रत्येक घर ं
गुंभार का साग आया था। दो एक घरों से साग भी न आया था—

केवल मकई की रोटी थी और पिसी हुई मिर्च और नमक। पारो के घर से प्याज़ की तीन गांठें आई थीं। पारो ने उन्हें शीघ्रता से पत्थर की एक बड़ी-सी सिल पर रख कर पीस डाला और नमक, मिर्च और वहीं से जंगली पोदीना तोड़कर चटनी बना डाली। सर्वप्रथम उसने मकई की रोटी पर चटनी रखकर मुझे खाने को दी। फिर अमजद को दी। अमजद अपने होंठ चबाने लगा। मुझे रोटी खाने में बड़ा आनन्द आया। पारो के कुंदनी मुख पर उस समय एक अनोखी, भोली, नट-खट और चंचल-सी मुस्कान थी। वह चेहरा, वह मुस्कान मुझे अब भी याद है।

खाने के पश्चात् हम नदी से पानी पी रहे थे कि अमजद ने मुझे धक्का देकर पानी में गिरा दिया। पारो चिल्लाई। मैंने क्रोध में आकर अमजद पर पानी फेंका और फिर नदी से निकल कर उससे हाथापाई करने लगा।

अमजद बोला—"बस अपने बंगले को सीधे चले जाओ। पारो से मैं ब्याह कर रहा हूँ।"

मैंने कहा—"नहीं, पारो से मैं ब्याह करूँगा। तू तो मुसलमान है। पारो से कैसे ब्याह करेगा?"

वह बोला—"इससे क्या? तुम तो बाहर के रहने वाले हो, पंजाबी हो। हम कश्मीरी हैं, और फिर तुम्हारा बाप बंगले में रहता है।"

हमारे चारों ओर एक घेरा बनाकर खड़े हो गए और चिल्ला-चिल्ला कर हमें बढ़ावा देने लगे। थोड़ी देर में मेरा दम फूलने लगा और अमजद ने मुझे ज़ोर से धरती पर पटक दिया। वह घुटने टेककर मेरी छाती पर चढ़ बैठा। अब मैं बाज़ी हार बैठा था और रेत मेरी आँखों में था, क़ानों में, और गले में। फिर भी जब तक मैंने किटकिटाकर अमजद की बांह में न काट खाया उसने मझे न छोड़ा।

एक लड़के ने कहा—"यह ग़लत बात है, इसने अमजद की बांह में काट खाया है।"

दूसरा बोला—"हाँ यह अनुचित है।"

तीसरा बोला—"ठीक है, ठीक है।"

एक लड़की बोली—"इसे दण्ड मिलना चाहिए, यह ठीक नहीं लड़ा।"

पारो बोली—"हाँ, इस लड़के के कपड़े रख लो, इसे मत दो। इसने अमजद की बांह में काटा है। यह लड़का है या बावला कुत्ता।"

फिर सब चरवाहे मुझे "बावला कुत्ता" "बावला कुत्ता" कहकर चिढ़ाने लगे। मेरी आँखें जो पहले ही रेत भर जाने के कारण जल रही थीं, अब शोक और क्रोध से भर आईं और मैं दहाड़ें मारकर रोता हुआ, नङ्ग-धड़ङ्ग अपने बंगले की ओर चल पड़ा और दूर तक चरवाहे और चरवाहियां, नाच-नाचकर और चिल्ला-चिल्लाकर मुझे बोली मारते रहे—"बंगले का बावला कुत्ता, बंगले का बावला कुत्ता।"

कपड़े खोए, जूता खोया, बस्ता खोया और हर स्थान पर ठुकाई हुई—नदी पर, घर पर, स्कूल में। परन्तु मुझे किसी पर क्रोध न था—न अमजद पर, न घर वालों पर, न मास्टर पर। केवल मुझे पारो पर क्रोध आ रहा था और रह रह कर आ रहा था। कमज़ात, नीच, कमीनी—कहती थी 'इसके कपड़े छीन लो।' हाय, हाय, न हुई उस समय मेरे पास जादू की छड़ी, नहीं तो दुष्ट को एक क्षण में चुहिया बना देता।

पारो मेरे प्रेम की प्रथम हार थी। यह अलग बात है कि उस समय में उस हार, उसके दुःख और उसके आँसुओं का अनुभव न कर सका। परन्तु हार के इस लम्बे जलूस पर जब कभी मुड़कर दृष्टि डालता हूँ तो दृष्टि के छोर पर मुझे पारो का कुंदनी चेहरा दिखाई पड़ता है—उसकी भोली-भोली आँखों में एक भोली चंचलता है और अपने दांतों में उसने एक सुनहरी लट दाब रखी है और चुपचाप हँस रही है।

दूसरे दिन शायद कोई त्यौहार था और मैं नए-नए कपड़े पहने, बंगले के बाहर पीले गुलाब की बेल के नीचे खड़ा था और इस प्रतीक्षा में था कि माँ कैमरा लेकर आए और मेरा फोटो खींचे। इतने में अमजद हाथ में गोफिया लिए भागता हुआ वहां से गुज़रा। मुझे देखकर वह ठिठक गया और कहने लगा—

"यहाँ खड़े क्या कर रहे हो?"

मैंने मुंह फेर लिया।

उसने गुलाब के फूलों पर मँडराती हुई रंग-बिरंगी तितलियों को देखा—"आहा हा हा, तुम्हारे यहाँ तो बड़ी अच्छी तितलियां हैं। तुम उन्हें पकड़ते नहीं?"

उसके स्वर में बड़ी कोमलता थी, मानो वह मुझ से क्षमा याचना कर रहा हो। मेरा मन भी थोड़ा-सा पसीजा, परन्तु मैं चुप ही रहा। उसने गोफ़िये में एक कंकर रखकर फेंका—"यह कंकर पारो के घर तक गया है। आज पारो ने नए कपड़े पहने हैं।"

मैं चुप रहा।

सितारों वाली मखमली टोपी ओढ़े हुए था और पांव में चर-चर करता हुआ नया जूता पहने था।

"यह उसके चाचा का लड़का है।" अमजद ने स्वयं मुझे बताया।

पारो ने हम दोनों को पीले गुलाब की बेल के नीचे खड़े देखा। उसने हम दोनों पर एक दृष्टि डाली और फिर एक अभिमान भरी अदा से मुंह फेर लिया और अपने चचेरे भाई से हँस-हँस कर बात करने लगी। फिर वे दोनों बाहों में बाहें डाले नाचते हुए दौड़ने लगे। पारो का पिता उनको देख-देखकर प्रसन्न हो रहा था।

अमजद के चेहरे का रंग उड़ गया। उसने बड़ी सावधानी से अपने गोफ़िये में एक कंकर रखा और उसे झन्नाटे से पारो और उसके साथी लड़के की ओर फेंका। पारो ने मुड़कर हमारी ओर शरारत भरी निगाहों से देखा और फिर मुस्कराकर उसने बालों की एक लट अपने दांतों में दाब ली और नाचती दौड़ती आगे बढ़ गई।

अमजद ने मेरा हाथ पकड़ लिया और ऐसे बोला जैसे अपना कोई भेद बता रहा हो—"बड़ी कमीनी है पारो।"

"कमजात है।" मैंने कहा।

"और उसके बाप को तो देखो", वह बोला—"गंजा, सड़े चमड़े जैसा।"

मैंने कहा—"उसकी नाक देखी ? करेले की तरह......"

"और उस लड़के का मुंह कैसा था ?" अमजद बोला—"जैसे फटा हुआ ढोल।"

"और वह चलता कैसे था ?" मैंने उसकी नक़ल उतारते हुए कहा, "बागड़बिल्ले की तरह।"

"अरे, वह तितली...आहा हा हा" अमजद चिल्लाया।

और फिर हम दोनों बाढ़ के ऊपर से कूद कर हाथ में हाथ डाले उस लाल रंग की तितली की ओर लपके जो बगीचे में नाचती हुई जा रही थी।

: ८ :

एक चित्र

जिसका न अभी तक कोई आदि है, न अन्त है और
जो हर समय नेत्रों के सामने नाचती रहती है...

उस दिन मैं बहुत उदास था, क्योंकि एक पुस्तक में मैंने उसी दिन जर्मनों के उन अत्याचारों का विवरण पढ़ा था जो उन्होंने यूक्रेन देश के निर्दोष बच्चों पर किये थे। वैसे तो मृत्यु के सम्मुख प्रत्येक व्यक्ति भोला-भाला और निर्दोष हो जाता है—जीवन के अन्तिम छोर पर उसकी स्थिति एक भोले शिशु के समान हो जाती है। मैंने बड़े-बड़े अपराधियों और फांसी पर लटकने वालों को देखा है कि मृत्यु की काली सुरंग की दहलीज़ पर वे एक बच्चे के समान बन जाते हैं। उस समय ऐसा लगता है मानो उन्होंने कोई अपराध किया ही नहीं, उनकी आंखों में उस समय वही कुतूहल और अचम्भा भरा होता है जिससे उन्होंने अपने जीवन के पहले दिन इस संसार को देखा था।

परन्तु बच्चों की बात और है। यदि घोर अपराधी मृत्यु के सम्मुख अबोध शिशु जैसा बन जाता है तो फिर उन नवजात कलियों की निर्मलता और स्वच्छता का तो क्या ही कहना है जो अभी मृत्यु और जीवन के भेद को भी नहीं समझतीं, और जिनकी आत्मा पाप, घात, अपराध और किसी भी बुरी भावना से कलुषित नहीं हुई है।

इस पवित्रता को कुचलने के लिए किसी असाधारण शक्ति की आवश्यकता है—ऐसी शक्ति जिसमें मानवीयता का चिन्ह तक भी शेष न हो। ऐसी शक्ति किसी मनुष्य तो क्या, किसी भी प्राणी के हृदय से नहीं निकल सकती, वरन् वह निकलती है किसी वज्र में से फूट कर। यह अमानुषिक, नारकीय शक्ति मनुष्य के संसार में कैसे और कहाँ से आ गई—यही उस दिन उस पुस्तक को पढ़कर मैं सोच रहा था। बीते युगों में, सैंकड़ों नहीं हज़ारों वर्ष पहले के समय में, मेरी कल्पना जा पहुँची। मैंने अपनी कल्पना में एक युद्ध के पश्चात् दूसरा युद्ध देखा और मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि यह क्रूर, पाशविक भावना कोई नई नहीं है। कभी इसका नाम रूसी था और कभी जर्मनी, कभी अंग्रेज़ी तो कभी अमरीकन, कभी हिन्दुस्तानी और कभी ईरानी, परन्तु थी यह वही भावना जो मनुष्य-हृदय नहीं, पत्थर की छाती को चीरकर निकलती है। परन्तु मनुष्य की बस्ती में इसका क्या काम ? यहां यह युगों से क्या कर रही है ? मैंने, तुमने, और उसने, जिसे सब लोग इतिहास कहते हैं, इसे अपने यहाँ क्यों जगह दे रखी है ?

मैं यही बात सोचकर उदास हो रहा था। व्याकुल होकर मैंने पुस्तक को तिपाई पर रख दिया। मैंने ध्यानपूर्वक अपनी बच्ची की ओर देखा जो मेरी गोद में लेटी हुई एक छोटी-सी कटोरी में से भूना हुआ आलू खा रही थी। मुझे देखकर उसके भोले मुख पर मुस्कान दौड़ गई। उसकी नन्हीं-नन्हीं अंगुलियों से तनिक-सा आलू का गूदा लगा हुआ था। अंगुलियां मेरी ओर बढ़ाकर वह कहने लगी, "खाओ।"

मैंने कहा, "नहीं, तुम खाओ।"

"नहीं तुम", उसने अनुरोध किया, और अपनी अंगुलियां मेरे मुख में डाल दीं।

आलुओं का गूदा कोई विशेष वस्तु नहीं। और न ही किसी बच्ची का अपने पिता से प्यार करना कोई असाधारण बात है। ऐसी साधारण बात से किसी कहानी सुनने वाले को क्या आनन्द प्राप्त हो सकता है ?

मुझे भी इस बात से कोई आनन्द प्राप्त नहीं हो रहा था। वही फीकी उदासी मन पर छाई थी। अब भी जब उस बात को याद करता हूँ तो वही उदासी मन पर फिर छा जाती है। आलू का गूदा कुनीन की भाँति कटु था, क्योंकि यूक्रेन में बच्चों पर गोली चलाई गई थी, हाथों से उनकी आंखें निकाल ली गई थीं, और उनके मृत शरीरों को नंगा करके बरफ़ पर फेंक दिया गया था और यहां यह मेरी बच्ची मुझ से कह रही थी, "थाओ।"

जिस जर्मन ने बच्चों पर गोली चलाई थी, जिस मनुष्य ने पहली बार बच्चे पर हाथ उठाया था, उसे इसी प्यार, इसी आलू के गूदे और इसी कटोरी ने जन्म दिया था। फिर वह भोलापन, वह मानवीय सूक्ष्म भावना, वह प्यार किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो गया, किस प्रकार समाप्त हो गया, कहां चला गया? प्रभो! उसे कौन ले गया?

मैंने बच्ची को सोफे पर लिटा दिया और स्वयं घर से बाहर निकल खड़ा हुआ। मैं अभी बाहर नहीं निकल पाया था कि बच्ची ने मुझे पुकारा। मैंने मुड़कर देखा, वह अपने दोनों हाथ बढ़ाए एक में कटोरी और दूसरे में आलू का गूदा लिए हुए कह रही थी, "थाओ।"

मूर्ख लड़की!

यह समझती नहीं है कि स्वयं जन्म लेकर जन्म देती है, मनुष्य की जननी बनकर चट्टान को जन्म देती है। अब कोई तुझ से क्या कहे? "थाओ!" आज आलू का गूदा खिला रही है, कल को गोली चलवाएगी। मैं नहीं कुछ खाता-वाता।

मैं जब उदास होता हूँ तो सदा 'गरीब घर' के सामने से होकर निकलता हूँ। अन्य किसी दिन भी मैं वहां से होकर नहीं

पुल के पार, नुक्कड़ पर एक ईरानी होटल है जिसमें पुराने गन्दे चम्मच हर समय चाय के गन्दे प्यालों से खड़खड़ाते रहते हैं। होटल के बाहर सदा मांस जलने की बू आती रहती है। यहां लोग खड़े होकर कबाब खाते हैं और कबाब खाकर सिगरेट और पान का आनन्द उड़ाते हैं। दो-चार बैरे जो पैन्शन ले चुके हैं पुलपर बैठे रहते हैं और अपने अंग्रेज़ मालिकों की आश्चर्यजनक जीवन-घटनाओं को बीते हुए समय के खण्डहरों में से खोद-खोद कर सुनाते रहते हैं। दो कोढ़ी—एक पुरुष और एक स्त्री—सदा पुल के सिरे के निकट बैठे हुए मिलते हैं और आपस में गुप-चुप बातें करते हुए आने-जाने वालों की ओर ऐसी दृष्टि से देखते हैं मानो उन्होंने उनका एकान्त तोड़ दिया हो। पुल की मेहराब के नीचे धोबी कपड़ों को पत्थरों पर कूटते दिखाई देते हैं। कभी-कभी वे अपना हाथ रोककर नाले के समीप वाले नीम के पेड़ की ओर देख लेते हैं जहां उनकी बहू-बेटियां झूला झूल रही होती हैं। नन्हे-नन्हे बच्चे गोफ़िये लिये चिड़ियों को निशाना बनाने में व्यस्त दिखाई पड़ते हैं। छोटे-छोटे द्वारों में से पीली-पीली स्त्रियाँ झांकती हैं और लम्बी नाक वाले पारसी बच्चे जिनके गाल पिचके हुए हैं गुबारे उड़ाते हुए दिखाई पड़ते हैं।

पत्थर के पुल के उस पार 'गरीब घर' है। इन घरों में दो बारकों की दो आमने-सामने लम्बी पंक्तियां हैं। इन बारकों का रंग काला है। इन्हें एक पारसी लखपति बामनजी गोडनवाला ने बनवाया था। क्या लखपति सदा केवल गरीब-घर ही बना सकते हैं? क्या लखपति केवल महायुद्ध ही करा सकते हैं? क्या ऐसा धन सचमुच ही जीवन को और जीवन के आनन्द को चूस लेता है, और गरीब-घर बनवाता रहता है? इस गरीब-घर के द्वार पर लोहे का कटहरा है और लोहे के कटहरे के बाहर बाज़ार है, दूकानें हैं, और छोटे-छोटे द्वार वाले घर हैं जिनमें से पीली-पीली स्त्रियां झांकती रहती हैं। ऐसा लगता है मानो इस कटहरे के दोनों ओर 'गरीब-घर' हैं। एक तो वह जिसे बामनजी

गोडनवाला ने वनवाया था। और दूसरा 'गरीव-घर ?'—यह किसने वनवाया है ? तुम एक गरीव-घर को देखते हो, दूसरे को नहीं देखते जो तुम्हारे चारों ओर यहां तक कि तुम्हारे अपने अन्दर भी विद्यमान है।

आइए, पहले उस गरीव-घर की ओर चलते हैं जिसको लोहे के लम्वे कटहरे ने वाज़ार से अलग किया हुआ है। यहां मैं उस समय पहुँचता हूँ जव मेरा मन वहुत उदास होता है—इसलिये कि मेरा दुःख दूर करने के लिये यहां एक व्यक्ति विद्यमान है—यह व्यक्ति गरीव-घर के अन्दर नहीं, वरन् उसके वाहर रहता है—अर्थात् धरती के उस टुकड़े पर जो कटहरे के वाहर और सड़क के वीच में है।

यह व्यक्ति यहां पर क्यों रहता था ? इसलिये कि यह नितान्त निर्धन था—इतना निर्धन और निरर्थक कि गरीव-घर की वारकें भी इसे शरण देने में असमर्थ थीं। इसकी टांगें नहीं थीं, शरीर में केवल सूखा हुआ धड़ और दो सूखी हुई वाहें थीं। शरीर पर दो सूखी हुई छातियां इस प्रकार लटकी हुई थीं मानो दो मरे हुए चूहे हों। मुख पर सहस्रों झुर्रियां; मुख भी काला और आंखें भी काली; और दांत मुख में एक भी नहीं ! सिर के वाल सफ़ेद। नहीं, सफ़ेद नहीं, वरन् पीले से, सफ़ेद से, वाल ऊपर को खड़े रहते थे जिनमें कंघी शायद वरसों से नहीं हुई थी।

यह वेढंगा, विना टांगों वाला शरीर मेरा मित्र था, मेरा दुख-दर्द का साथी—वह शरीर जो किसी का न था, वे आँखें जो जीवन और मृत्यु से परे थीं। ऐसी आँखें मैंने किसी मनुष्य के मुख पर नहीं देखीं। मुझ से यह न पूछो कि उन आंखों में क्या था। यह पूछो कि उन आंखों में क्या नहीं था ? सृष्टि का सारा सौन्दर्य और सारी कुरूपता एवं भयंकरता सिमटकर उसकी आंखों में समा गई थी। वे सहानुभूतिपूर्ण, सहृदय, भावुक आँखें सव कुछ समझकर भी अनजान [illegible]ने वाली आंखें, मानो उन्होंने जीवन और मृत्यु का भुर्ता [illegible]

और अब मुझ से कह रह थीं 'थाओ।' गरीब-घर के बाहर सड़क के किनारे पड़ी रहने वाली आत्मा भी इतनी निरीह, निर्दोष हो सकती है, यह बात समझ में न आती थी। शायद इसीलिये दोनों लोकों ने उसे दुत्कार दिया था। उस लोहे के कटहरे के दोनों ओर जो दो संसार थे। वह उनमें से किसी की भी नहीं थी। इन दोनों के बीच में लोहे के कटहरे से लगी हुई, सिमटी-सिमटाई, दो पग भूमि पर घिसटती हुई वह अपने झुरियों से भरे हुए मुख को अपने हाथों में लिये दोनों दुनिया से अलग-थलग बैठी रहती थी और दोनों दुनिया का तमाशा देखती रहती थी—या शायद दोनों दुनिया से पूर्णतया उदासीन थी। मैंने उसे कभी भीख माँगते नहीं देखा। कई बार मैं उसके सामने से निकल गया—उसकी ओर घूरता हुआ तिरछी निगाह से उसे देखता हुआ चला गया, परन्तु उसने कभी मेरे सामने हाथ नहीं फैलाए। दोनों दुनिया से दुत्कारी हुई भिखारिन इतनी गर्वीली क्यों थी? क्यों थी, क्यों, मेरे प्रभु!

एक दिन मैंने उसे एक आना दिया। उसने चुपके से अपनी कटोरी में से वह इकन्नी निकाल कर सामने हलवाई के छोकरे को आवाज दी, "ऐ गड्डू! वट्टी के लिये गुलाबजामन दे जाइयो।"

यह ठाठ हैं!

दूसरे दिन मैंने फिर एक आना दिया।

"ऐ गड्डू! लाल के लिये इमरती ले आइयो।"

तीसरे दिन मैंने फिर एक आना दिया।

"ऐ गड्डू! शीरीं के लिये लड्डू ले आइयो।"

चौथे दिन मैंने फिर एक आना दिया।

"गड्डू! होली के लिये थोड़ी मलाई ले आइयो।"

वट्टी, लाल, शीरीं और होली चार बच्चे थे। आदमी के नहीं बिल्ली के। बिल्ली का नाम गुल था। वह काले और सफेद रंग का एक फूल थी, जिसकी हथेलियों में कांटे लगे हुए थे। यह बिल्ली उस बूढ़ी

भिखारिन के सामने एक राजकुमारी की भांति पड़ी रहती थी—ठोस, निकम्मी और सुस्त। उसके बच्चे बुढ़िया के चारों ओर खेलते रहते। वे उसके सिर पर चढ़ जाते और उसके बालों से खेलते रहते। इनमें बट्टी सबसे अधिक चंचल थी और बुढ़िया की प्यारी थी। मैंने जब देखा उसे बुढ़िया के सिर पर ही देखा। बट्टी को गुलाबजामुन बहुत पसन्द थे।

"और तुम स्वयं क्या खाती हो?" मैंने, जब हम मित्र बन गए, तो उससे पूछने का साहस किया।

वह हाथ से संकेत करती हुई बोली, "मैं इधर-उधर का कूड़ा-करकट खाती हूँ।"

"तुम इस गरीब घर के अन्दर जाकर क्यों नहीं रहतीं?"

"वहां इसाई लोग रहते हैं, और गरीब पारसी रहते हैं।"

"और तुम कौन हो?"

"मैं पूजा हूँ।"

"पूजा?"

"हां, पूजा। एक दिन मुझे मेरी मां इस गरीब घर के द्वार पर छोड़ गई थी। उस दिन नगर में गणपति पूजा की धूम-धाम थी। वहां एक कोढ़ी बैठा करता था। उसी ने मेरा पालन-पोषण किया और मेरा नाम पूजा रख दिया। मेरी मां ने गणपति पुजाई थी ना? तभी तो उसने ऐसी सुन्दर नारी को जन्म दिया था। हा हा हा!!"

"कौन थी तुम्हारी मां?"

"अपनी मां से पूछो कि मां कौन होती है। मेरी मां को किसने देखा? और यह है भी सच। क्योंकि पूजा की मां को कब किसने देखा है? वह अन्धकार की चादर ओढ़े प्रभात की छवि में। जब आकाश में तारों के पांव भी डगमगा रहे थे, वह यहाँ धीरे-धीरे आई थी, उस समय जब कि कोढ़ी भी सो रहा था। उस समय वह देवी यहां आई थी जिसका हृदय वज्र का था। और इसलिये वह लोहे के पास आई थी

और उसने अपनी बेटी को लोहे के कटहरे को सौंप दिया था। फिर उसी प्रभात के झुटपुटे में लौट गई और लुप्त हो गई थी। क्योंकि गणपति ने उसे जो बेटी दी थी उसके पांव नहीं थे केवल धड़ था और उसके बाल जन्म से सफेद थे। पता नहीं गणपति महाराज यहाँ सूंड लगाना कैसे भूल गए।" यह कहकर वह अपनी नाक थपथपाने लगी। फिर मुस्कराकर बोली, "कहते हैं गणपति की पूजा के दिन मैं उस कोढ़ी की कुतिया के गरम शरीर से लगी हुई पड़ी रही और उसका दूध पीती रही। जब कोढ़ी उठा तब भी मैं सो रही थी। और मन्दिरों में गणपति पूजन हो रहा था। उसने मुझे अपनी गोद में उठा लिया और पूजा की। समझे ? उसकी आँखें मानो हँस रही थीं।

उस दिन के पश्चात् हम दोनों एक-दूसरे के मित्र बन गये। वह कूड़ा-करकट खाकर प्रसन्न थी और बट्टी, लाल, शीरी और होली के लिए मिठाई मंगाकर आनन्द-विभोर हो उठती थी। उसे आज तक किसी ने भीख माँगते नहीं देखा। मैंने उसे कभी उदास, चिन्तित एवं दुःखी नहीं देखा। इसलिए मैं जब भी उदास होता था, उसके पास जाता था और उससे दो-चार मिनट बातें करके आगे चल देता।

एक दिन मैंने उससे पूछा, "तुम इतनी खुश क्यों हो ?"

"क्यों का क्या अर्थ ?"

"अर्थ यह कि मैंने तुम्हें कभी उदास नहीं देखा।"

उसकी आँखों की पुतलियाँ नाचने लगीं। सिर के बाल और भी ऊपर को खड़े हो गए। कहने लगी—"खोड़ी बाबा सदा रोते रहते थे। उनकी टाँग पर कोढ़ था। मैं सदा हँसती थी क्योंकि मेरे टांगें नहीं थीं। न मैं चल सकती हूँ, न बच्चे पैदा कर सकती हूं। हा हा हा ! बट्टी ! गुलाबजामन खाओ। हाँ, फिर भी देखो, मेरे बच्चे कितने प्यारे हैं। इधर आओ, लाल, शीरीं, होली, बट्टी, ओ बट्टी !" वह उन्हें अपने हाथों से उछालने और दुलराने लगीं। उसके कटोरे में थोड़ा-सा दूध पड़ा था और पास ही डबल रोटी के कुछ सूखे बासी टुकड़े।

"ये किसके लिये ?" मैंने पूछा, "तुम्हारे लिये ? आजकल तो आनन्द उड़ा रही हो। इन दिनों युद्ध की कृपा से हमें भी दूध नहीं मिलता।

वह बोली, "यह मेरे लिये नहीं गुल के लिये है। मैंने गुल की ओर देखा जो लाल रंग के कपड़े में सिमटी एक ओर पड़ी हुई इस ढंग से खर्र-खर्र कर रही थी जैसे उसे पीड़ा हो रही हो।"

"गुल को क्या हो गया ?" मैंने पूछा।

वह मुस्कराकर कहने लगी, "झोल देगी। एक दो दिन में।"

मैंने दो आने कटोरी में डाल दिये। वह एक आना लौटाकर बोली "नहीं तुमसे एक आना ही लेती हूँ। यह ले जाओ। परन्तु, कल अवश्य आना......गणपति का पूजन है। कल मेरा जन्म-दिन है...... हा हा......मिठाई खिलाऊँगी। उजले कपड़े पहन कर आना और हजामत बनवाकर।

× × ×

बच्ची, आलू के भुर्ते और "थाओ" को छोड़कर जब मैं गरीब-घर की ओर चला तो रास्ते में ढोल, ताशों और बैल-गाड़ियों का एक विशाल समूह मिला। स्त्रियाँ आभूषणों से लदी-फंदी थीं। बैल-गाड़ियां फुलकारियों से सजी हुई थीं। बैलों के सींगों पर सिगोटियां चढ़ी हुई थीं और बैलों के शरीर पर स्त्रियों ने भांति-भांति के चित्र बनाए हुए थे। आज गणपति पूजन था, इसलिए स्त्रियों के नेत्रों में काजल अधिक गहरा था, होंठों पर गीत थे और हृदयों में एक अज्ञात-सी थरथरी—मानो किसी अज्ञात, अदृश्य प्रीतम से मिलने की अभिलाषा इन्हें आन्दोलित कर रही हो। ढोल की ऊँची, गम्भीर ध्वनि के बीच में गणपति की स्तुति का गीत हो रहा है......फूल-द्वार पर वन्दनवारें ......और पुल के पार तेरी मुस्कराती हुई, आर्द्र आँखें। जानता हूँ तू मेरी प्रतीक्षा नहीं कर रही है। जानता हूँ कि तेरे अन्तस्तल के आकाश को मेरी आँखों की लपटें नहीं छू सकतीं। जानता हूँ मैं अकेला,

असहाय, भूखा-प्यासा इस पत्थर के पुल पर से चला जाऊँगा—एक भिखारी जो दूसरे भिखारी से मिलने जा रहा है।

पत्थर के पुल के उस पार वह बैठी है, हँस रही है और बिल्ली के बच्चों को खिला रही है। आज गणपति पूजन है, इसलिए उसने प्रत्येक बच्चे के गले में लाल, नीले, पीले,ऊदे रंग के चीथड़े बांधे हैं। आज भी वट्टी उसके सिर पर बैठी है और वट्टी की गरदन में एक सुन्दर रंग की 'बो' लगी हुई है।

मैंने उस 'बो' की ओर संकेत करके पूछा, "यह फ़ीता कहां से लिया ?"

उत्तर मिला, "उस लड़की से लिया है जिसे तुम हर रोज घूर कर देखते हो।"

"झूठ !" मैंने कहा।

"नहीं, सच कहती हूँ। उसी से मांगा है। जीवन में आज पहली बार भीख मांगी है।"

"क्यों ?"

वह बोली, "आज गणपति-पूजन है और मुझे उसकी आंखों में ..." यह कहकर वह चुप हो गई। न जाने आगे वह क्या कहती। उस समय उसके नेत्रों में एक विलक्षण सी, एक भेद-भरी मुस्कान थी। मैंने कहा, "कहो, कहो, रुक क्यों गई ?"

वह कुछ देर चुप रहकर बोली, "कुछ नहीं,......जानते हो आज तुम्हें मिठाई नहीं खिलाऊँगी, यद्यपि मैंने वचन दिया था।"

"पर क्यों ?"

"गुल मर गई है।" उसने धीरे से कहा, "और बच्चों को भूख बहुत लगी हुई है।"

मैंने देखा कि सचमुच गुल लाल रंग के कफ़न में लिपटी हुई गरीब-घर की दीवार से लगी हुई पड़ी है।

"और उसके पेट में जो बच्चे थे ?" मैंने उससे पूछा और बट्टी को प्यार करने लगा।

"बस, कोख अंधी आ गई। अब क्या हो सकता है !"

बट्टी बुढ़िया के सिर से उछली और सड़क की ओर भाग पड़ी। उधर से एक मोटर आ रही थी, बहुत तीव्र-गति से।

अरे......

क्षण भर में ही मैंने बुढ़िया को सड़क के बीचों बीच घिसटते हुए देखा। अगले ही क्षण मोटर का पहिया उसके सिर पर से गुजर गया। चीख की सी आवाज आई और ब्रेक एकदम लगने की आवाज। बस थोड़ी देर में ही लोगों का विशाल समूह एकत्रित हो गया। पहले कुछ क्षणों तक तो जैसी पृथ्वी पर मेरे पाँव गड़े रहे। फिर मैं तेजी से आगे बढ़ा। जन-समूह को चीरता हुआ मैं उसके शरीर तक पहुँचा और उसे पहिये में से खींच कर बाहर निकालने का प्रयत्न करने लगा। बाहर खींच कर मैंने उसे अच्छी तरह देखा। उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे और उसकी बांहें और गर्दन अन्दर की ओर मुड़े हुए थे। उसका सिर चटख गया था और भेजा बाहर निकल आया था।

मैंने उसकी गर्दन को सीधा करने का प्रयत्न किया और उसकी बांहें अलग कीं तो देखा कि उसने बांहों के बीच में बट्टी को छिपा रखा है। बट्टी उसकी निर्जीव, निश्चल, छाती से लगी हुई थी और उसकी आंखें बन्द थीं। मैंने सोचा, बेचारी यह भी मर गई है। मैंने उसे धीरे से छुआ तो वह एक दम उछल कर अलग हो गई और म्याऊँ-म्याऊँ करने लगी। फिर वह चारों ओर देखने लगी और बुढ़िया का सिर सूंघने लगी और उसके सिर के चारों ओर चक्कर लगाने लगी। फिर बहुत व्याकुलता से वह म्याऊँ-म्याऊँ करने लगी।

कार में रेडियो अभी तक बन्द न हुआ था। "......यूक्रेन की सेना ने शत्रु को अपने प्रान्त से बाहर निकाल दिया है। यूक्रेन स्वतन्त्र कर लिया गया है......"

लोग प्रश्न कर रहे थे, यह सड़क के बीच में कैसे आ गई। इस अपाहज बुढ़िया के पांव कहां से लग गए थे। किस प्रकार वह एक बिल्ली के बच्चे को बचाने के लिये सड़क के ठीक बीच में आंख झपकते में आ पहुंची थी। वह जो दिन भर में एक पग भी न चल सकती थी, किस प्रकार क्षण भर में ही मोटर के पहिये के बीच में आ घुसी थी ?

अद्भुत चित्र था ! वे श्वेत, मटियाले बाल, झुर्रियों से भरा हुआ मुख, बिना टांगों का शरीर, सूखी छातियाँ, भेजा बाहर और बट्टी की गर्दन में नया रंगीन फीता। एक अद्भुत और विलक्षण चित्र था वह ! ऐसा चित्र तो चित्रकार पकासो ने भी न बनाया होगा। डाली के मस्तिष्क में भी ऐसा अलौकिक दृश्य न आया होगा।...मैं मुस्कराने लगा। यह रोने की बात नहीं थी।

लोग पूछ रहे थे, यह कैसे हुआ ? कैसे हुआ ? निःसन्देह यह एक चमत्कार था।

'हां, सचमुच यह एक चमत्कार है'—कोई मेरे मन के अन्दर बार बार यह कह रहा था। परन्तु चमत्कार यह नहीं था कि बिल्ली के बच्चे बुढ़िया ने अपने प्राण देकर बचाया था; चमत्कार शायद यह है कि उसने तुम्हारी बच्ची को बचाया है, मेरी और तुम्हारी और सब की बच्चियों को बचाया है। पूजा ने शायद उन सब बच्चियों को बचाने का प्रयत्न किया था जिनके कलेजों में अमानुषिक हाथों से कटार घोंपी जाती है, जिनकी आंखें वज्र के हाथों द्वारा उनके चेहरों से निकाली जाती हैं और जिनकी छातियों में दिन रात दुश्मन की गोलियां लगती रहती हैं। और मूर्ख लोग कह रहे थे कि मूर्ख बुढ़िया ने अपने प्राण बिल्ली के बच्चे के प्राण बचाने के लिये दे दिये।

"म्याऊं......म्याऊं।"

कमबख्त भिखारिन...!

मेरा जी चाहता था कि मैं उन लोगों से उस समय कुछ कहूं। मैं क्या कहना चाहता था ? मैं उन लोगों से यह कहना चाहता था...

: ९ :

मेरे मित्र का बेटा

तीन वर्ष के पश्चात् मेरे मित्र ने मुझे पत्र लिखा, "तुम्हारी कहानियों को पढ़ते-पढ़ते अब तुम्हारी ओर से निराशा हो गई है। तुम एक महान् कहानीकार बन सकते थे परन्तु अन्त में एक बहुत बड़े प्रचारक बनकर रह गए हो। तुम्हारी कहानियों में प्रोपेगैण्डा और बेकार की लैक्चरबाज़ी के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। तुम्हारी कहानियों का अन्त अब पहिले ही से ज्ञात हो जाता है। अब उनमें वह आनन्द नहीं रहा......।"

लम्बा-चौड़ा पत्र था। पुरानी बातें, नई शिकायतें। मेरे मित्र ने जिस ऊँचे मीनार पर बैठकर मुझे पत्र लिखा था, वह उसे शोभा देता था। वह बहुत धनवान है और लाखों रुपये के चोर-बाज़ार का धन्धा करता है। रुई, चावल, सीमेण्ट, लोहा, कागज़, मोटर, कारबाइड, लिपस्टिक—किस वस्तु में उसने चोर-बाज़ार नहीं किया? वह जिस वस्तु को हाथ लगाता है, वह बाज़ार से लुप्त हो जाती है और फिर चोरी-छिप्पे सोने के मोल बिकने लगती है। मेरा मित्र कभी नहीं पकड़ा गया, क्योंकि वह पकड़ने वालों को भी रुपया देकर प्रसन्न रखता है अर्थात् लगे हाथों उनकी ईमानदारी और देश-भक्ति को भी उसने चोर बाज़ार में बेच दिया है। मेरा मित्र बहुत ही चतुर है, 'काइयाँ, परन्त एक

बहुत बड़ा गुण भी उसमें है। वह साहित्य का पुजारी है, काव्य का प्रेमी और कहानियों और उपन्यासों पर आसक्त। उसके पास एक बहुत बड़ा निजी पुस्तकालय है। वह साहित्यिकों का भक्त है। बहुधा उनका आदर-सत्कार करके बहुत प्रसन्नता का अनुभव करता है। इसलिये जब उसका यह पत्र मेरे पास आया तो मैं बहुत उदास हो गया। हर लिखने वाले को अपनी कृतियाँ प्रिय होती हैं, वह प्रशंसा से प्रसन्न होता है और अपनी बुराई सुनकर खिन्न हो जाता है। इस सम्बन्ध में वह ठीक अन्य पुरुषों जसा होता है जो अपने परिश्रम की प्रशंसा और उसका पारितोषिक चाहते हैं।

पत्र साढ़े चार बजे की डाक से आया था। मैंने उसे एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा, तीसरी बार पढ़कर अपनी पतलून की जेब में डाल लिया और घर से बाहर टहलने के लिये निकल गया।

सिर झुकाये हुए, विचार-मग्न और म्लान-चित्त, चलते-चलते सहसा मेरे मन में अमने मित्र की प्रेमिका का ध्यान आया। जब मेरा मित्र बम्बई में था तो उसने एक प्रेमिका पाली हुई थी—जैसे लोग तोता या बन्दर पालते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वह पहले ही से एक भ्रष्ट, पतित और कामुक प्रकृति की लड़की थी और एक सजे सजाए घर में रहती थी जहाँ दो नौकर थे, सोफ़ा सैट थे, आराम कुर्सियां थीं, रेडियो था, एक खान-साहब थे जो उसके घर का सारा खर्च चलाते थे। उन्होंने उसका नाम गुलबानो रख छोड़ा था। इससे पूर्व उसका नाम कुछ और था और जब मेरे मित्र ने उसे पाला तो उसका नाम रामप्यारी रख दिया। रामप्यारी बड़ी भोली लड़की थी। वह पतित होते हुए भी पुरुष के प्रेम की इच्छुक थी। खान-साहब ने उसे रुपया दिया परन्तु प्रेम तनिक न दिया। बेचारे सज्जन पुरुष थे। जो वस्तु उनके पास न थी, कहाँ से देते? प्रेम तो मेरे मित्र के पास भी न था, परन्तु वह बहुत समय से चोर-बाजार का धन्धा करता था इसलिये वह प्रेम भी ऐसे ढंग का ले आया और गुलबानो उपनाम रामप्यारी को ऐसा

झांसा दिया कि वह अपना धन्धा भूल उसके प्रेम के गीत गाने लगी। इसी बीच में रामप्यारी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि बिल्कुल अपने बाप की भूरी आँखें, सुनहरे बाल और मोहें होंठ लिये हुए था। मेरे मित्र को अपने बेटे से बड़ा प्यार था, परन्तु रामप्यारी के शरीर में इस बच्चे के जन्म के पश्चात् मेरे मित्र के लिये वह आकर्षण और मोहकता न रही और कुछ यह बात भी थी कि उन दिनों वह दिल्ली में चीनी की एक बहुत बड़ी मिल बनाने की योजना पर विचार कर रहा था। अतः बच्चे के पहले जन्म-दिन के कुछ महीने पश्चात् वह एक दिन सहसा बम्बई से चल पड़ा और उसने रामप्यारी या मुझे या अपने किसी मित्र को भी यह नहीं बताया कि वह कहां जा रहा है। वह ऐसे लुप्त हो गया जैसे कण्ट्रोल होते ही कोई वस्तु बाजार से लुप्त हो जाती है। अब तीन वर्ष के पश्चात् उसका पत्र आया था और सहसा मेरे मन में उसकी प्रेयसी का ध्यान आया और तुरन्त ही मैंने सोचा कि क्यों न चलकर उस बेचारी की सुध लूँ, जाने किस दशा में होगी !

यही सोचता-सोचता मैं लोकल ट्रेन से बन्दर पहुँच गया और रामप्यारी के मकान की ओर चला। उस समय छः बज चुके थे और बरगांजा लेन की बत्तियाँ जल गई थीं। इस लेन के छोर पर वह मकान था जिसकी पहली मंजिल पर रामप्यारी रहती थी। सीढ़ियाँ चढ़कर मैंने द्वार खटखटाया तो अन्दर से उसका पुराना नौकर आँखें झपकाता हुआ बाहर निकला। मुझे पहचानकर मुस्कराने लगा। बोला—

"सेठ जी आए हैं ?"

मैंने कहा—"खाली मैं ही आया हूँ।"

"आइये, आइये।" वह द्वार पूरी तरह खोलते हुए और स्वयं एक ओर हटते हुए बोला—"अन्दर चले आइये।"

मैंने अन्दर जाकर पूछा—"बाई जी कहाँ हैं ?"

"वह तो बाहर गई हैं।" नौकर विस्मय से मेरी ओर देखने लगा, मानो कह रहा हो 'क्या आपको नहीं म

दिन शाम को इस समय घर से बाहर चली जाती हैं और सुबह सवेरे लौटकर आती हैं। जब आप सेठ साहिब के साथ तशरीफ़ लाते थे, उस समय भी हमारी बाई जी का यही नियम था। फिर आप इस समय यह व्यर्थ बातें क्यों कर रहे हैं।'

मैं सोफ़े पर बैठ गया। वही कमरा था, वही सोफ़े, गुलदान, रेडियो, ग्रामोफ़ोन और फ़िल्मी पत्रिकाएँ। ड्राइङ्गरूम से शयनगृह भी दिखाई दे रहा था। बिस्तर के ऊपर नीले रंग का गाउन पड़ा था और मसहरी पर एक सलवार लटक रही थी और उसका कमरबन्द नीचे बिस्तर की ओर जा रहा था जिसके पास एक काठ का घोड़ा खड़ा था। कदाचित् बच्चे का होगा।

मैंने दृष्टि घुमाकर नौकर की ओर देखा—

"कहो रामभरोसे कैसे हो ?"

वह शीघ्रता से इधर-उधर देखकर बोला—"साहब मेरा नाव अब रामभरोसे नहीं है—जॉन है।"

"जॉन ?" मैंने विस्मित होकर पूछा।

"हाँ, और बाई जी भी अब रामप्यारी नहीं रहीं, वे मिस सोफ़िया कहलाती हैं।"

"यह क्या बात है ?"

जॉन के गन्दे दाँत बाहर निकल आए। हँसकर बोला—"सेठ जो इस मकान का मालिक है, वह क्रिस्चियन है—बरगाँजा सेठ। यह सारी की सारी लेन उसी की है। बड़ा अमीर आदमी है।"

"ओह" मैंन थूक निगलते हुए कहा और मुझे ध्यान आया कि कभी हमारी सड़क, जहाँ हमारा मकान है, अकबर रोड कहलाती थी। फिर उसका नाम जान मैलकम रोड हो गया। आजकल वह कुञ्जीलाल भुङ्गीलाल रोड है। जब स्वामी बदल जाते हैं तो सम्पत्ति का नाम भी बदल जाता है, दासता वैसी की वैसी ही रहती है।

जॉन ने पूछा—"आप चाय पियेंगे ?"

"नहीं।" मैंने उत्तर दिया।

"कोई ठण्डी-वण्डी चीज़ ?"

"नहीं।"

"इन्हें पुडिंग खिलाओ।" यह एक छोटा-सा बालक बोल रहा था। आयु चार वर्ष से कम ही होगी। मैंने देखते ही पहचान लिया—वही सुनहरे बाल, चौड़ा माथा, भूरी आँखें और मोटे होंठ—मेरे मित्र का बेटा। खाकी निकर और गुलाबी क़मीज़ पहने हुए था। मैंने उसे अपनी गोद में उठा लिया और प्यार करने लगा।

लड़के न कहा—"क्या तुम मम्मी के दोस्त हो ?"

मैंने रुककर कहा—"हाँ।" नहीं तो और कहता भी क्या।

"मम्मी घर पर नहीं है," बालक ने कहा, "वह रात को कभी घर पर नहीं रहतीं।"

"कहां जाती हैं ?" मैंने बड़े कोमल स्वर में पूछा।

बालक ने तनिक तुतलाते हुए कहा—"का—काम पर जाती हैं। सवेरे आती हैं।" फिर तनिक ठहर कर बोला—

"तस्वीरें देखेंगे ?"

"अवश्य देखेंगे।"

लड़का मेरी गोद से उतर कर शयन-गृह में चला गया और वहां से 'टाइम्स आफ इण्डिया' का वार्षिक अङ्क उठा लाया और फिर आकर मेरी गोद में बैठ गया।

फिर सहसा कुछ सोचकर तुरन्त मेरी गोद से उतर गया और फिर घबराकर बोला—"सिग्रेट पीते हो ?"

मैंने कहा—"नहीं।"

वह बोला—"मेरी मम्मी तो पीती हैं। यहां तो सब पीते हैं, तुम क्यों नहीं पीते ?"

मैंने पूछा—"क्या तुम्हारी मम्मी सिग्रेट पीती हैं ?"

"हां सिग्रेट पीती हैं। तुमको वह डिब्बा दिखाऊँ?" वह फिर गोद से उतरकर भीतर जाने लगा।

मैंने रोककर कहा, "इसकी आवश्यकता नहीं। आओ तस्वीरें देखें।"

बच्चा पन्ने उलटने लगा। बड़े-बड़े रंगीन विज्ञापन थे। पहला विज्ञापन घड़ियों का था।

बच्चे ने कहा "ये घड़ियां हैं, सब अच्छी-अच्छी घड़ियाँ हैं। तुम्हें कौन-सी पसंद है?"

"मैंने एक छोटी-सी घड़ी की ओर संकेत करते हुए कहा—"यह।"

बच्चा बोला, "वाह! यह तो स्त्रियों की घड़ी है। पुरुषों की घड़ी तो यह होती है—बड़ी वाली। अच्छा तुमको यही ले देंगे।"

बच्चा इतना कहकर हँसने लगा। अगले पन्ने पर पौण्ड्स क्रीम का विज्ञापन था।

बच्चे ने कहा, "मेरी मम्मी इसे लगाती है। तुम मेरी मम्मी को लाकर देना और यह इत्र की शीशी भी और ऐसा होंठों को लगाने वाला।"

"ला देंगे।"

पन्ना उलट गया। यहां पर कागज का विज्ञापन था—कैनेडियन कागज का विज्ञापन। यहाँ पर एक घने वन का चित्र था जिसमें ऊँचे वृक्ष खड़े थे।

मैंने बालक से पूछा—"यह क्या है?"

वह बोला—यह वन है ना? इसमें टारजन रहता है। टारजन मुंह पर हाथ रख कर ऐसे चिल्लाता है जैसे बिल्ली—हा हा हा। टारजन को मैंने सिनेमा में देखा था। मम्मी मुझको अंकिल के साथ ले गई थी।

"वाह, तुम अंकिल को नहीं जानते ? अंकिल की बड़ी-बड़ी मूछें हैं। लाल लाल आंखें हैं। मुझे उससे बड़ा डर लगता है। एक दिन रात को अंकिल हमारे घर पर सो रहा था...।"

मैंने घबराकर पन्ना उलट दिया। इस पन्ने पर ओरिएन्ट लाइन जहाज़ों के चित्र थे।

बालक ने कहा, "यह जहाज़ है—ईशटी-मर ईशटीमर। तुम जानते हो ?"

"हाँ जानता हूँ।" मैंने धीरे से कहा।

"तो मुझे ला दोगे ? मुझे तो बस ऐसा ही जहाज़ चाहिये। इतना बड़ा, ऐसा सफेद रंग का।"

"अच्छा ला देंगे।"

"कहाँ से लाओगे ?"

मैंने कहा, "बाज़ार से लाऊँगा।"

"अच्छा।" बालक ने कहा "अच्छा तो समुद्र भी साथ लाना।"

"समुद्र भी साथ लाएंगे।"

"कहाँ से लाओगे ? समुद्र भी बाज़ार में बिकता है ?"

"नहीं, समुद्र बांदरा पुल के नीचे सोया पड़ा रहता है ?" एक दिन मैं वहां जाऊँगा और चुपचाप उसके गले में रस्सा डाल कर उसे यहाँ ले आऊँगा।"

"हाँ, जैसे घोड़े को बाँध कर ले आते हैं। तो......हा हा हा मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।" बालक ने प्रसन्न होकर कहा।

"अच्छा हम दोनों चलेंगे।" मैंने पन्ना उलटते हुए कहा।

बालक ने कहा, "मम्मी और अंकिल मुझे कभी बाहर नहीं ले जाते अपने साथ। दूसरे बच्चे लोग तो अपनी मम्मी के साथ बाहर जाते हैं। क्यों ?"

मैंने पन्ना पलटा। यह फाउन्टेन पेन का चित्र था। एक की निब पतली दिखाई गयी थी, दूसरे की मोटी।

...ने पूछा, "तुम्हें कौन-सा पैन अच्छा लगता है ?"
...कहा—"मोटी निब वाला।"
...ह क्यों ?"
...ोटी निब वाला साफ़-सुथरा लिखता है।"
...ऊँहूँ, पतली निब वाला अधिक साफ़ लिखता है, पतली निब
...लेना। समझे ?"
"समझ गया।"
"तो आगे चलो।"
आगे एक लेख था सैनिकों के विषय में। एक चित्र में एक सैनि...
...ी पहने ढोल बजा रहा था।
"यह कौन है ?" मैंने पूछा।
बालक ने कहा—"यह मैं हूँ, ढोल बजा रहा हूँ।"
दूसरे पन्ने पर एक मनुष्य पानी की बालटी भरे चला आ रहा
था। बालक ने कहा, "यह हमारा नौकर है।" फिर उसने शीघ्रता से
एक पन्ना और उलट दिया। यह ह्विस्की का विज्ञापन था।
बालक ने चिल्लाकर कहा—"आह ! ब्राँडी। यह ब्राँडी की बोतल
है। मेरी मम्मी ब्राँडी भी पीती है।" उसने बड़े गर्व से सिर उठाकर
कहा और फिर मुझ से पूछा—
"तुम भी पीते हो तो लाऊँ, वह वहाँ पलंग के नीचे रखी है ?"
मैंने कहा—"नहीं। मुझे ब्राँडी अच्छी नहीं लगती। कड़वी होती
है ना ?"
बालक ने बड़े मुरझाए ढंग से सिर हिला कर कहा—"कड़वी
चीज़ें मुझे भी अच्छी नहीं लगतीं। यह देखो मेरे पैर में घाव है।"
बालक ने अपना पैर दिखाया जिस पर टिंकचरआयोडीन लगा
हुआ था।
बालक ने कहा—"इस घाव में बड़ी पीड़ा होती है, परन्तु मम्मी
सदा इस पर कड़वी दवा लगाती हैं।"

"कड़वी दवा ?" मैंने विस्मित होकर पूछा।

"हां।" वह बोला—"मम्मी सदा कड़वी दवा लगाती हैं। इससे मुझे बड़ी पीड़ा होती है। मैं चाहता हूँ कोई मेरे घाव पर मीठी दवा लगा दे, चीनी की भांति मीठी दवा।"

मैंने कहा—"मैं तुम्हें दवा ला दूंगा।"

बालक ने अपने दोनों नन्हें से हाथ मेरी गर्दन में डाल दिये और अपने कपोलों को मेरी गर्दन से छुआकर बोला—

"अवश्य ला देना। वचन दो।"

"मैं वचन देता हूँ।"

"अच्छा तो मैं तुम्हें एक बहुत अच्छी चीज़ दिखाता हूँ, आँखें बन्द करो।"

मैंने आँखें बन्द कर लीं।

"आँखें खोलना नहीं, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूंगा—" शयनगृह के भीतर जाते हुए बोला। फिर वह पलंग के नीचे से दो पटाखे चलाने वाले पिस्तौल निकाल लाया। अब वह पिस्तौल मेरे सामने ताने खड़ा था।

"पटाख, पटाख" बालक पिस्तौल को चलाते हुए ज़ोर से चिल्लाया। फिर उसने पिस्तौल को अपने नेकर की जेबों में डाल लिया और मुझे सैनिक सलाम किया।

मैंने उसे सलाम किया।

वह बोला—"कबूतर देखोगे ?"

मैंने कहा—"कहाँ हैं कबूतर ?"

वह बोला—"सो रहे हैं, उधर कबूतरखाने में।"

"मम्मी तो रात को जागती हैं और दिन को सोती हैं कबूतर दिन को जागते हैं और रात को सोते हैं। उनमें से है और एक मेम साहब।"

मैंने कहा—"मेम साहब कौन-सा कबूतर है ?"

वह जो छाती फुला के यूँ चलता है, वह मेम साहब है। एक दिन उसकी दुम से बहुत सारे अण्डे निकले। पतले-पतले छोटे-छोटे अण्डे। मैंने एक अण्डा फोड़ दिया अपने हाथ से, तो मम्मी ने मुझे पीटा। मम्मी जब बहुत ब्रांडी पी जाती हैं तो बहुधा मुझे पीटती हैं। यह घाव जो पांव में है ना, यह ऐसे ही हुआ था। मगर मम्मी मुझे पीटने के बाद बड़ा प्यार करती हैं, चाकलेट खाने को देती हैं। मगर एक बार मम्मी ने मुझको बहुत पीटा था, पर वह दूसरी बात थी।

"क्या बात थी ?"

वह बोला—"किसी से कहोगे तो नहीं ?"

"नहीं।"

वह बोला—"मैं गली में खेल रहा था। वह जो धोबी का लड़का है ना, जो काला सा है और नंगा रहता है......।"

"हाँ हाँ", मैंने सिर हिलाते हुए कहा।

"मैं उसके साथ खेल रहा था। मैंने उससे शीशे की गोली छीन ली। वह मुझे कहने लगा, गोली दे दे। मैंने नहीं दी। वह कहने लगा, तू रण्डी का बेटा है। मैंने तब भी नहीं दी, तो उसकी माँ ने आकर मेरे एक चाँटा मारा और वह गोली मुझ से छीन ली और बोली— "चला जा यहाँ से, रण्डी का बेटा।" मैं रोता हुआ घर आया तो मम्मी ने मुझे बहुत मारा और मुझे यह भी नहीं बताया कि रण्डी का बेटा कौन होता है। तुम जानते हो रण्डी का बेटा कौन होता है ?"

मैं कोई उत्तर न दे सका। मेरी जिह्वा पर मानो ताले पड़ गये।

बालक के चौड़े मस्तक पर व्यग्रता झलकने लगी। उसके मोटे होंठ नीचे ढलक गए मानो वह मुँह बिसूर रहा हो। वह धीरे से बोला—"मेरी मम्मी तो अच्छी हैं। वह रण्डी नहीं हो सकतीं। मेरे पप्पा रण्डी होंगे। वे तो कभी हमारे घर नहीं आते। अवश्य वे रण्डी होंगे। मेरी मम्मी बोलती थीं कि वे कभी घर नहीं आएँगे। क्यों नहीं आएँगे ?" उसने मेरी ओर दृष्टि फेर कर पूछा।

मैंने शीघ्रता से दृष्टि हटा ली और टाइम्ज़ आफ़ इण्डिया के पन्ने पलटने लगा। पन्ने पलटते-पलटते एक विज्ञापन सामने आया—एक सुन्दर बालक हँस रहा था। लड़के ने उसे देखकर कहा—"मैं छुक से इसका गला काट डालूँगा।"

"वह क्यों ?"

"बस काट डालूँगा।"

मैंने फिर पूछा—"वह क्यों ?"

"यह......यह मेरी ओर देखकर क्यों हँसता है ?"

बालक ने धीरे-धीरे क्रोध और घृणा के मिश्रित भावों से पराभूत होकर कहा, "यह सदा मेरी ओर देखकर हँसता है।" 'छुक' 'छुक' उसने एकदम चाकू से चित्र को दो-तीन स्थानों से काट डाला। हँसते हुए बालक का चित्र जगह-जगह से फट गया।

मैंने बालक को गोद से उतार दिया और वार्षिक अंक बन्द करके मेज़ पर रख दिया।

बालक के हाथ में चाकू था। वह विस्मय से मेरी ओर देख रहा था।

मैंने नौकर को आवाज़ दी—"रामभरोसे......ओह......जॉन ......जॉन !"

"जी सरकार।"

"मैं जाता हूँ भई।"

"अच्छा जी, तो बाई जी से क्या कहूँ ?"

सहसा मेरे मस्तिष्क में एक उर्दू कवि 'फ़ैज़' की दो पंक्तियाँ बिजली की भाँति कौंध गईं—

अपने बेख़ाब किवाड़ों को मुक़फ़्फ़ल कर लो।
अब यहाँ कोई नहीं, कोई नहीं आएगा॥

(अपने रात भर खुले रहने वाले द्वार बन्द कर लं
नहीं आएगा, कोई नहीं आएगा।)

मैंने धीरे से कहा, "क्या कहोगे—कह देना कोई नहीं आया था।"

मैंने बालक के सिर पर हाथ फेरा जो अभी तक चाकू लिये खड़ा था।

बालक ने चाकू धरती पर फेंक दिया और सोफे से लगकर सिसकियाँ भरने लगा, "मम्मी...मम्मी...मैं मम्मी के पास जाऊँगा।"

× × ×

मेरे दोस्त ! क्या मैं तुम्हारी रंगीन रातों की विलासितापूर्ण कहानी लिखूं या इस बालक की कहानी, जिसके गले में आज ही से फाँसी का फन्दा देख रहा हूं, जो इस समय भी चाकू हाथ में लिये, गलियों के सुन्दर मुस्कराते हुए बालकों का गला काट रहा है।

मेरे दोस्त ! मैं जानता हूँ मेरी कहानी में वह आनन्द नहीं है जो शराब के पैग में, कामवटी में, वेश्या की ठुमरी में होता है। परन्तु मैं क्या करूं ? मैंने अभी तक अपनी कहानी को चोर-बाजार में नहीं बेचा है, जहाँ तुमने मेरे देश की राजनीति, शहीदों की मर्यादा और बेटियों का सतीत्व बेचकर चीनी की मिल खड़ी की है।

मैं भी अपनी कला बेचकर तुम्हारे जीवन पर चीनी की एक तह सकता हूँ परन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि मेरे सामने तुम्हारा बेटा है और मेरी कहानी उसके नवजीवन के लिए युद्ध कर रही है।

: १० :

अनुमान

मैं उस दिन कार्नोलिया होटल में बैठा हुआ, चाय की प्याली अपने सामने रखे हुए सोच रहा था कि लड़कियाँ रुपये को इस तरह चाट जाती हैं जैसे दीमक लकड़ी को। जेब में केवल चार आने थे। पाँच महीनों में बीस सहस्र रुपये कमाये थे, परन्तु आज केवल चार आने शेष थे। होटल के बाहर मौसम अत्यन्त सुहावना था, रिम-झिम वर्षा हो रही थी। एँग्लो-इण्डियन और पारसी लड़कियों की टाँगें बाहर इधर-उधर जाती हुई दिखाई पड़ रही थीं। मैंने देखा, कुछ टाँगें कुंवारी थीं, कुछ व्याही हुईं। कुछ नव-विवाहित थीं, कुछ पुरानी, और कुछ तलाक़ ले चुकी थीं। कुछ नए पतियों की तलाश में थीं, कुछ टाँगें गर्भवती थीं और कुछ जन्म से ही बांझपन का बीमा कराके आई थीं। शोकातुर टाँगें, निराशा और दुःख से दबी हुई टाँगें, हर्षोत्फुल्ल टाँगें, भारी, भद्दी टाँगें, सुडौल, सुबक, चुस्त टाँगें। सेब की शाखा की भांति गदराई हुई भारी बोझल, बेढब टाँगें, वे टाँगें जिन पर किसी निर्दयी पति ने सात बच्चों का बोझ लाद दिया था। मनुष्य-जीवन में मुखाकृति की व्याख्या की अपेक्षा टाँगों की व्याख्या अधिक ठीक है। लोग दूसरों के मुख का अध्ययन करते हैं, मैं टाँगों का।

दो सांवली-सलोनी टाँगें चौबीस इंची मोहरी की पतलूनों के साथ आईं और होटल के बरामदे में से होकर मेरे सामने वाली मेज़ के निकट कुर्सी पर सुशोभित हो गईं। पतलून बार-बार सलोनी टाँगों से टकरा जाती थी। मैंने दृष्टि उठाकर देखा—एक जामन और एक अमरूद साथ बैठे चाय पी रहे थे, और एक दूसरे की ओर देखकर मुस्करा रहे थे। जिसका रंग सांवला था और होठों पर कासनी रंग की लिपस्टिक पुती हुई थी, और जिसके बाल काले थे, वह जामुन थी और दूसरा अमरूद।

अमरूद ने कहा, "मुझे तुम्हारा नया लिपस्टिक बहुत पसन्द आया।"

जामुन ने मुस्करा कर अपने बालों पर हाथ फेरा। मेज़ के नीचे टाँगें हिलीं।

अमरूद ने कहा, "कल मुझे वेतन मिलेगा। हम वसीन चलेंगे—पिकनिक पर।"

जामुन नेत्र झुकाकर चाय की प्याली में देखने लगी। वसीन की पिकनिक कितनी आकर्षक होती है! छोटे-छोटे सुन्दर होटलों के बरामदों में बेंत के मूढ़े और सामने ताज़ी ताड़ी। नेत्रों में विलासता की पेंगें। मीलों तक फैले हुए जंगलों में घूमना-फिरना। वसीन के प्राचीन दुर्ग का शानदार दृश्य। कमर में हाथ डाले धीरे-धीरे विलायती नृत्य। और शाम को वापस आते हुए स्टेशन पर गोआनी और ईसाई नवयुवतियों का धीरे-धीरे टहलना। स्टेशन की मद्धम बत्तियों का धीमा-धीमा प्रकाश। लो, वह गाड़ी आ गई......।

चाय की प्याली समाप्त हो गई। जामुन ने कहा, "हां, अवश्य।" (घड़ी की ओर देखकर) मुझको मैनेजर साहब का ड्राफ्ट समाप्त करना है। अच्छा, तो अब मैं चलती हूं।"

जामुन उठकर चलने लगी, साथ ही अमरूद भी। सहसा मेरी दृष्टि एक नवयुवक पर पड़ी जो उसी मेज़-कुर्सी की ओर आ रहा था जहां

से जामुन और अमरूद चाय पीकर उठ चुके थे।

अत्यन्त भोला-भाला मुख, कोई वीस-बाईस वर्ष का नवयुवक होगा। रंगत ऐसी कि छूने से मैली हो। आँखों में एक निथरी-निथरी चमक जैसे तट पर पानी से धोये हुए पत्थर के छोटे-छोटे सुन्दर चमकीले टुकड़े। चाल में एक विशेष प्रकार का गर्व। वस्त्र अत्यन्त साधारण और अस्त-व्यस्त—मानो उसका व्यक्तित्व कह रहा हो, 'हम चाहें तो इससे सौ-गुणा सुन्दर वस्त्र पहन लें, परन्तु हम ऐसा नहीं करते, क्योंकि यह मान-मर्यादा के विरुद्ध है।' यह नवयुवक मेरी दृष्टि में जँच गया। मैं मनोविज्ञान का विशेषज्ञ होने का दावा नहीं करता, परन्तु मैं भावनाओं का अध्ययन अवश्य कर सकता हूँ। मेरे रुधिर में शायद कहीं मनुष्य की छठी ज्ञानेन्द्रिय अवश्य छिपी हुई है जो मेरी बुद्धि को मनुष्य-जीवन के छिपे हुए भेदों तक ले जाती है। जैसे अन्धकार में कोई दिया-सिलाई जला दे, उसी प्रकार यह छठी ज्ञानेन्द्रिय हर वात को प्रकाशित कर देती है। फिर यहाँ तो अंधेरा था ही नहीं, यहाँ तो प्रकाश था। मैं पहली ही दृष्टि में आदमी को भाँप लेता हूँ। बहुधा अत्यन्त सुन्दर वस्तुएँ मेरे मन पर खराव प्रभाव छोड़ जाती हैं और भौंडी से भौंडी वस्तुएँ अपने सद्गुणों के कारण मेरी इस ज्ञानेन्द्रिय से रगड़ खाकर मेरे मस्तिष्क में चमक उठती हैं—हीरे-जवाहरात की भांति। और यह मेरी छठी ज्ञानेन्द्रिय कभी धोखा नहीं देती। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से एक विशेष प्रकार की लहरें-सी प्रसारित करता रहता है। ये लहरें या तो इतनी आकर्षक होती हैं कि हर आदमी उस व्यक्ति में दोष देखता हुआ भी उसकी ओर खिचता हुआ चला आता है। या फिर ये लहरें इतनी घृणाजनक होती हैं कि उस व्यक्ति की अत्यन्त लुभावनी मुस्कान के होते हुए भी लोग उससे घृणा करने लगते हैं। और यह सब कुछ उसी पहले क्षण में ही हो जाता है जब कि एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व से टकराता है।

कुछ भी हो, मेरे सामने इस समय यह सुन्दर नवयुवक

लगता था मानो नगर में वह नया-नया आया हो। जो लोग बम्बई के नहीं होते वे बम्बई में स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं। फिर सब से पहली बात तो यह है कि बम्बई में किसी व्यक्ति का मुख इतना भोला-भाला और निरीह नहीं होता। यहाँ जीवन का भोलापन दस वर्ष की आयु तक समाप्त हो जाता है यहाँ के स्कूल के बच्चों को देखिये—वे इतने बूढ़े, चतुर और होशियार दिखायी देते हैं कि भगवान् ही उनसे बचाए! घुड़ दौड़ में जूआ ये खेलते हैं, सट्टा ये लगाते हैं, ब्लैक मार्केट के सौदे ये करते हैं, सिनेमा ये देखते हैं, बेबी बानो से बूढ़ी बेला तक हर फ़िल्म-अभिनेत्री की वंश-परम्परा से ये परिचित हैं। ये बालक नहीं हैं, ये बूढ़े बालक एक दुष्ट संस्कृति, एक अन्धे पैशाचिक समाज, एक पागल जीवन-प्रणाली के शिकार हैं। यदि किसी को यह देखना हो कि पूंजीवादी समाज मनुष्य को क्या बना देता है तो उसे बम्बई के बच्चे देखने चाहिएँ।

परन्तु यह नवयुवक तो बम्बई का न था। न ही यह बच्चा था। बच्चा न होते हुए भी यह अपने मुख पर और अपने सारे व्यक्तित्व में शिशुओं का सा भोलापन लिये हुए था। यह आकर उसी मेज़ पर बैठा जिस पर कुछ क्षण पहले अमरूद और जामुन बैठे हुए थे। फिर उसने मुस्करा कर बैरे को चाय की प्याली और क्रीम-रोल लाने के लिये कहा। चाय पीते हुए वह अपने-आप मुस्करा रहा था—किसी की ओर देखकर नहीं, अपने अन्दर ही अन्दर; मानो अपने-आप ही मुस्कराना सुन्दर दिखाई देना, भोलेपन से जीवन व्यतीत करना उसके जीवन का स्वाभाविक कार्य था। उसने अपने कोमल हाथों से बड़ी सफ़ाई के साथ एक क्रीम-रोल उठाया। कितना भोला-सा हाथ था वह! देवताओं की सी पवित्रता लिये हुए! उसके व्यक्तित्व की हर अदा में एक अद्भुत-सा आकर्षण था। मैं चकित और मोहित हो गया।

चाय के दो घूंट पी लेने के पश्चात् बड़े आराम से उसने अपनी

जेब से एक लिफ़ाफा निकाला और उसमें से पत्र निकाल कर पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते वह फिर मुस्कराया और उसके मुख-मण्डल पर एक पवित्र ज्योति मानो बिखर गई। उसकी निगाहें लचक उठीं, गल्ले लाल हो गए, ओठ हल्की-सी मुस्कान से काँप उठे, जैसे किसी फूल की पत्ती ओस की बूँदों के बोझ से काँप जाय। मैं सोचने लगा कि बम्बई में यह पवित्रता की मूर्ति कहाँ से आ गई।

उस पत्र में क्या था जिसे पढ़कर वह इस प्रकार प्रसन्न हो रहा था, जैसे सारे संसार में फूल ही फूल बिखर जाएँ। मैंने सोचा यह शायद इसकी प्रिया का पत्र होगा—"प्राणप्यारे! मैं इस छोटे से गाँव में, इस छोटी-सी नदी के किनारे, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। बम्बई में अधिक दिनों तक मत ठहरना। सुना है वहाँ फिल्मी परियाँ होती हैं जो आदमियों का कलेजा निकाल कर खा जाती हैं और फिर वह आदमी कभी घर लौटकर नहीं आ सकता। मेरे प्राण! मैं तुम्हें यह छोटी-सी तस्वीर भेज रही हूँ। इसे गले में लटका लेना। फिर कोई फिल्मी परी तुम्हारा कलेजा न निकाल सकेगी। और अविलम्ब मेरे पास आ जाओ। मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में गुलाब के फूल के कान में कहा है और अब मैं इस फूल को अपने जूड़े में लगा रही हूँ। इसी-तरह मुझे भी तुम अपने चरणों में लिपटा लो। तुम्हारी—स्नेहलता।" हर प्रेमी-प्रेमिका का पत्र ऐसा ही होता है। प्रेम के बिना संसार में जीवित रहना कठिन है। अब इसमें कोई कितना ही नमक-मिर्च मिला ले—यह अपनी अपनी पसन्द की बात है।

उस युवक ने एक बार फिर उस पत्र को पढ़ा और वह फिर [illegible] दिया। फिर वह उसे तह करने लगा। मैंने सोचा यह स्नेह[illegible] पत्र नहीं हो सकता—क्योंकि वह युवक इतना भोला-भाला [illegible] यदि वह पत्र स्नेहलता का होता तो वह निश्चय ही [illegible] सबके सामने अपनी आँखों और अपने कलेजे से [illegible] लेता। परन्तु वह चुपचाप उसको तह कर रहा था

स्नेहलता का नहीं हो सकता। यह इसकी नौकरी लगने का पत्र है। बाईस वर्ष के युवक की पहली नौकरी का नियुक्ति-पत्र—"हमें तुम्हारी १० जुलाई की चिट्ठी मिली। काफ़ी विचार के बाद हम तुम्हें अपनी फर्म में कारेस्पोण्डेण्ट क्लर्क के पद पर नियुक्त करते हैं। वेतन ५०), अलाऊँस १०), साल में १२ दिन की छुट्टी। फर्म के दफ्तर में १५ तारीख को उपस्थित हो जाओ। ह० मैनेजर फर्म।"

मेरे मन ने कहा, हो न हो, यह इसकी प्रियतमा का पत्र नहीं, वरन् इसकी नियुक्ति का पत्र है। युवक कितना प्रसन्न-चित्त दिखलाई पड़ रहा था। होता भी क्यों न ? बेकारी के युग में यदि किसी को नौकरी मिल जाए तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसे राशन मिल गया, वर्ष भर में कपड़ों के दो जोड़े मिल गए, रहने के लिए ८ फुट लम्बा ८ फुट चौड़ा कमरा मिल गया, बिजली का एक बल्ब और पानी का नल मिल गया। उसके पश्चात् जीवन कितना सपाट हो जाता है, उसमें कोई अल-बल नहीं रहता। सवेरे सात बजे उठकर ९॥ बजे तक नित्य-कर्मों से निबट कर तैयार हो जाओ और खाना खाकर दफ्तर चले जाओ। वहाँ से शाम को छः बजे छूटकर सिनेमा में घुस जाओ। रात को १० बजे आकर सो जाओ और अगले दिन सवेरे यही क्रम। नवयुवक निःसन्देह अपनी नौकरी का समाचार पाकर ही इतना प्रसन्न था। मैंने अपने दिल में कहा, तुम्हारी नौकरी तुम्हें मुबारक हो युवक ! परन्तु मुझे दुःख इस बात का है कि नौकरी में तुम्हारा यह भोलापन शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।

युवक ने कागज़ को तह करके उसे लिफ़ाफे में रख लिया और लिफ़ाफे को चाय की प्याली के पास रख दिया। प्याली उसके ओठों तक आई और फिर वापिस मेज़ पर चली गई। वह अपने विचारों में डूबा हुआ था। वह क्या सोच रहा था—शायद स्नेहलता और नौकरी दोनों के सम्बन्ध में सोच रहा था वह। या सम्भव है, यह उसकी माता का पत्र हो। बेटा पहली बार नौकरी प्राप्त करके बम्बई जा रहा

था। घर की, कुटुम्ब की, बिरादरी की, उस गाँव के लोगों की सारी आशाएँ उस नवयुवक से सम्बद्ध थीं। वे अपने निराशापूर्ण और नीरस जीवन को एक प्रफुल्लित वाटिका के रूप में परिवर्तित होता हुआ देख रहे थे। "बेटा", माँ ने शायद लिखा होगा, "बम्बई बहुत बड़ा नगर है, सुना है वहाँ सड़कों पर छोटी-छोटी गाड़ियां चलती हैं। उनसे ज़रा बचकर रहना। बेटा, शाम को सूरज छिपने से पहले अपने चाचा के घर आ जाया करना। शाम के बाद बाहर न घूमना। बम्बई बहुत खतरनाक शहर है। बेटा, काम जी लगाकर करना ताकि मालिक तुमसे सन्तुष्ट और प्रसन्न रहे। बहिन तुझे बहुत याद करती है। मंगल के दिन वह अपने हाथ से मिठाई बनाकर तुझे पार्सल से भेजेगी। पार्सल की रसीद अवश्य भेजना। तुम्हारी—माता।"

हाँ, यह अवश्य उनकी माता का ही पत्र था जिसे पढ़कर वह सोच में डूब गया था। बीते समय की कष्टप्रद याद और आने वाले सुनहले युग का स्फूर्तिदायक स्वप्न और नए जीवन की उमंग, उसका चेहरा यह सब कुछ कह रहा था। इसी सोच-विचार के साथ उसने धीरे-धीरे अपनी चाय की प्याली समाप्त की और बिल देकर वहाँ से चला गया।

थोड़ी देर बाद मैं भी वहाँ से उठा। उसकी मेज खाली थी। ऐसा लगता था मानो अभी तक उसके सुन्दर और पवित्र व्यक्तित्व की ज्योति वहाँ छिटक रही थी। अरे! यह क्या? मैंने देखा कि वह युवक जल्दी में अपना लिफ़ाफ़ा वहीं छोड़ गया था। अभी वह बहुत दूर नहीं गया होगा। मैंने झटपट उस लिफ़ाफ़े को उठा लिया ताकि दौड़कर उसे दे दूँ। होटल के द्वार तक मैं द्रुतगति से आया। परन्तु फिर यह सोचकर मैंने अपनी चाल धीमी कर दी कि लाओ, इस पत्र को पढ़ लें। यद्यपि दूसरे का पत्र पढ़ना बहुत बुरी बात है, परन्तु मेरा जी न माना। मैंने सोचा, पढ़ ही लें, इसमें है ही क्या
अज्ञात प्रेरणा से वह लिफ़ाफ़ा खोल लिया। लिफ़ा

कागज पर गोंद से चिपका हुआ किसी समाचार-पत्र का एक टुकड़ा था। उस टुकड़े पर निम्न समाचार छपा हुआ था:—

एक भयानक हत्या

कल रात रोड़ी गांव के ज़मींदार भूराकर की किसी व्यक्ति ने हत्या कर दी। मृत शरीर पर छुरे के निशान थे। ज़मींदार की कोई सन्तान न थी। वह अपने भतीजे शंकर के साथ रहता था। शंकर उसी रात से भाग गया है। तिजौरी से बीस हजार के नोट लापता हैं। सम्भावना यही है कि यह हत्या शंकर ने की है। उसका हुलिया यह है—शरीर इकहरा, रंग गोरा, चेहरा गोल, आँखें बड़ी-बड़ी, ओठों पर हर समय मुस्कराहट खेलती रहती है।

: ११ :

सफेद फूल

महण्डर गांव के मोची का नाम कबाला था। कबाला को आज
क किसी ने झूठ बोलते अथवा गाली देते नहीं सुना था। इसके दो
ारण थे—एक तो यह कि उसका स्वभाव बड़ा अच्छा था और दूसरा
ह कि वह जन्म का गूंगा था। और फिर वैसे भी महण्डर बौद्धों का
ाँव था, जहाँ का प्रत्येक निवासी सत्य और अहिंसा का पुजारी था।
हां चोरी एवं डकैती नाम को नहीं हुई थी। सारांश यह कि महण्डर के
ोगों का जीवन ऐसा सुखी था जैसे वह स्वर्ग में रहते हों। हाँ, इतनी
ात अवश्य थी कि सामाजिक उलझनों में फँसकर गाँव के लोग कभी-
भी ऐसा कार्य कर बैठते थे, जिस पर उनको बाद में पछताना पड़ता
ा। वैसे, इस प्रकार की बातों के अवसर बहुत कम आते थे और
दि ऐसी बातें हो भी जाती थीं तो इसमें दोष तो समाज के नियमों
ा होता था। वे स्वयं दोषी कैसे ठहराये जा सकते थे?

पर सवार होकर देवदारु के वृक्षों की चोटियों के ऊपर से निकलते, तो नीचे गांव की चित्रित छतें और प्राचीन बौद्ध मन्दिर का मंगोली बुर्ज सुनहरी किरणों में जगमग करने लगता। प्रतिदिन सूर्य उदय होते ही, कवाला दूकान के बाहर एक छोटे-से अखरोट के पेड़ के नीचे आ बैठता और जूतियाँ गांठते-गांठते अपनी मोटी-मोटी विस्मयपूर्ण आँखों से दूर नीचे पगडंडी पर से जाती हुई युवतियों की ओर देखता जो मिट्टी की गागरें सिर पर उठाये हुए अथवा कूल्हों पर रखे हुए गीत गाती हुई, धीरे-धीरे जा रही होतीं। जब वे पगडंडी पार कर जातीं तब वह उन्हें ताकता रहता। उसे ऐसा लगता मानो उनके पांव से छू जाने के कारण पगडंडी की मिट्टी का प्रत्येक कण कुन्दन बनकर दमक रहा है। उसके नेत्रों में अश्रु की बूंदें झलक आतीं और उसके हृदय के अन्धकार में एक स्वर्ण की लकीर-सी खिंच जाती। उसके अभिलाषी मन में उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होती कि वह उच्च स्वर में गाने लगे। यहाँ तक कि दूर नीचे चलती हुई युवतियों के पांव रुक जायें—और नैना, गाँव के नम्बरदार की वह लावण्यमय, सुन्दर पुत्री भी एक हाथ गागर पर रखे और दूसरे हाथ से अपनी बसन्ती धोती का आंचल सम्हालते हुए उसकी ओर देखने लग जाये, और······पर्वत की चोटी के ऊपर उड़ने वाले सफेद-सफेद बादल सहसा थम जायँ और उसका मार्मिक गीत सुनने के लिए ऊँचे-ऊँचे देवदारु के वृक्षों के ऊपर आकर बैठ जायें। परन्तु जब कवाला गाने के लिए अपना मुंह खोलता तो उसके मुंह से सिवाय एक दबी हुई कर्कश चीख के और कुछ न निकलता। उस चीख को सुनकर आस-पास के वृक्षों पर बैठे हुए नन्हे-नन्हे पक्षी—कुक्कू, सन्होले तथा रेतगजे आदि भयभीत होकर पर फड़फड़ाते हुए उड़ जाते, और कवाला लज्जित होकर अपने ओठ ज़ोर से भींच लेता, जैसे उसने सूत के टांकों से उन्हें स्वयं ही सी दिया हो।

कवाला की आकृति बहुत सुन्दर थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें हरिण की आँखों जैसी थीं और प्रत्येक अंग मानो सांचे में ढला हुआ

था। जब वह अखरोट के पेड़ के नीचे बैठा हुआ जूतियाँ बना रहा होता तो उसका भोला और पवित्र चेहरा किसी देवता जैसा लगता।

परन्तु, बाह्य आकृतियाँ कितना धोखा देती हैं! कबाला को देखकर कोई व्यक्ति यह कल्पना नहीं कर सकता था कि कोई आज से दो सौ वर्ष पूर्व इस मोची के एक पूर्वज ने इस गांव के एक बौद्ध साधु का गला घोट कर मार डाला था, क्योंकि उसे यह सन्देह था कि वह साधु उस लड़की को भगाने का प्रयत्न कर रहा है जिससे कबाला का वह पूर्वज प्रेम करता था। गाँव में इस घटना से पहले शायद किसी की हत्या नहीं हुई थी। गांव के पंचों ने बहुत गहरे विचार के पश्चात् निश्चय किया कि किसी के प्राणों के बदले में दूसरे व्यक्ति के प्राण लेना अधर्म है। हाँ, इस अपराध के फलस्वरूप उन्होंने कबाला के उस पूर्वज को गांव से बाहर निकाल दिया था और साथ ही यह आज्ञा दे दी थी कि जब तक इस वंश की सात पीढ़ियां इस पाप का प्रायश्चित्त न कर लें, तब तक इस वंश का कोई भी व्यक्ति गाँव की सीमा के अन्दर पांव नहीं रख सकेगा। उस दिन से लेकर अब तक गांव के मोची की दूकान पहाड़ की चोटी पर थी। गर्मी हो या सर्दी, धूप हो या वर्षा, चार पीढ़ियों से गाँव के मोची ने गाँव में पाँव नहीं रखा था। वह अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खनेत्तर गाँव से लाता था जो महण्डर के पर्वत की दूसरी ओर एक छोटी सी घाटी में बसा हुआ था। और फिर कुछ वर्षों से तो खनेत्तर के मोची वंश से कबाला की इतनी गहरी छनने लगी थी कि वह बौद्ध पंचों के दिए हुए दण्ड को भूल-सा गया था।

हां, युवक कबाला के हृदय में कभी-कभी एक टीस सी अवश्य उठती थी क्योंकि वह नवयुवक था और था अकेला और गूंगा। उसके माता-पिता मर चुके थे और खनेत्तर के मोची वंश की दोनों लड़कियां अर्दानी तथा जीशी, उसके गूंगा होने के कारण, —— करती थीं, और उसके हाथों के विचित्र संकेतों को, जिनसे

होकर देवदारु के वृक्षों की चोटियों के ऊपर से निकलते, तो
...की चित्रित छतें और प्राचीन बौद्ध मन्दिर का मंगोली बुर्ज
किरणों में जगमग करने लगता। प्रतिदिन सूर्य उदय होते ही,
... दूकान के बाहर एक छोटे-से अखरोट के पेड़ के नीचे आ बैठता
...तियाँ गांठते-गांठते अपनी मोटी-मोटी विस्मयपूर्ण आँखों से ...
पगडंडी पर से जाती हुई युवतियों की ओर देखता जो मिट्टी
...ँ सिर पर उठाये हुए अथवा कूल्हों पर रखे हुए गीत गाती
...-धीरे जा रही होतीं। जब वे पगडंडी पार कर जातीं तब वह उन्हें
...कता रहता। उसे ऐसा लगता मानो उनके पांव से छू जाने के कारण
...गडंडी की मिट्टी का प्रत्येक कण कुन्दन बनकर दमक रहा है। उसके
...त्रों में अश्रु की बूंदें झलक आतीं और उसके हृदय के अन्धकार में
एक स्वर्ण की लकीर-सी खिच जाती। उसके अभिलाषी मन में उत्कट
अभिलाषा उत्पन्न होती कि वह उच्च स्वर में गाने लगे। यहाँ तक कि दूर
नीचे चलती हुई युवतियों के पांव रुक जायँ—और नैना, गाँव के
नम्बरदार की वह लावण्यमय, सुन्दर पुत्री भी एक हाथ गागर पर रखे
और दूसरे हाथ से अपनी वसन्ती धोती का आंचल सम्हालते हुए
उसकी ओर देखने लग जाये, और……पर्वत की चोटी के ऊपर उड़ने
वाले सफेद-सफेद बादल सहसा थम जायँ और उसका मार्मिक गीत
सुनने के लिए ऊँचे-ऊँचे देवदारु के वृक्षों के ऊपर आकर बैठ जायें।
परन्तु जब कबाला गाने के लिए अपना मुँह खोलता तो उसके मुँह
से सिवाय एक दबी हुई कर्कश चीख के और कुछ न निकलता। उस
चीख को सुनकर आस-पास के वृक्षों पर बैठे हुए नन्हे-नन्हे पक्षी—
कुक्कू, सन्होले तथा रतगजे आदि भयभीत होकर पर फड़फड़ाते हुए
उड़ जाते, और कबाला लज्जित होकर अपने ओठ ज़ोर से भींच लेता
जैसे उसने सूत के टांकों से उन्हें स्वयं ही सी दिया हो।

कबाला की आकृति बहुत सुन्दर थी। उसकी बड़ी-बड़ी आ...
हरिण की आँखों जैसी थीं और प्रत्येक अंग मानो सांचे में ढला ...

था। जब वह अखरोट के पेड़ के नीचे बैठा हुआ जूतियाँ बना रहा होता तो उसका भोला और पवित्र चेहरा किसी देवता जैसा लगता।

परन्तु, बाह्य आकृतियाँ कितना धोखा देती हैं! कवाला को देखकर कोई व्यक्ति यह कल्पना नहीं कर सकता था कि कोई आज से दो सौ वर्ष पूर्व इस मोची के एक पूर्वज ने इस गांव के एक बौद्ध साधु का गला घोंट कर मार डाला था, क्योंकि उसे यह सन्देह था कि वह साधु उस लड़की को भगाने का प्रयत्न कर रहा है जिससे कवाला का वह पूर्वज प्रेम करता था। गाँव में इस घटना से पहले शायद किसी की हत्या नहीं हुई थी। गांव के पंचों ने बहुत गहरे विचार के पश्चात् निश्चय किया कि किसी के प्राणों के बदले में दूसरे व्यक्ति के प्राण लेना अधर्म है। हाँ, इस अपराध के फलस्वरूप उन्होंने कवाला के उस पूर्वज को गांव से बाहर निकाल दिया था और साथ ही यह आज्ञा दे दी थी कि जब तक इस वंश की सात पीढ़ियां इस पाप का प्रायश्चित्त न कर लें, तब तक इस वंश का कोई भी व्यक्ति गाँव की सीमा के अन्दर पांव नहीं रख सकेगा। उस दिन से लेकर अब तक गांव के मोची की दूकान पहाड़ की चोटी पर थी। गर्मी हो या सर्दी, धूप हो या वर्षा, चार पीढ़ियों से गाँव के मोची ने गाँव में पाँव नहीं रखा था। वह अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खनेत्तर गाँव से लाता था जो महण्डर के पर्वत की दूसरी ओर एक छोटी सी घाटी में बसा हुआ था। और फिर कुछ वर्षों से तो खनेत्तर के मोची वंश से कवाला की इतनी गहरी छनने लगी थी कि वह बौद्ध पंचों के दिए हुए दण्ड को भूल-सा गया था।

हां, युवक कवाला के हृदय में कभी-कभी एक टीस सी अवश्य उठती थी क्योंकि वह नवयुवक था और था अकेला और गूँगा। उसके माता-पिता मर चुके थे और खनेत्तर के मोची वंश की दोनों लड़कियां अर्दानी तथा जीशो, उसके गूंगा होने के कारण, घृणा करती थीं, और उसके हाथों के विचित्र संकेतों की, जिनसे वह वाणी का

काम लिया करता था, नक़ल करके उसकी खिल्ली उड़ाया करती थीं। और जब इस हँसी-ठट्ठे में उनके तीनों बड़े भाई भी सम्मिलित हो जाते तो गूँगे के हृदय का घाव रिस-रिस कर बहने लगता और वह चीखें मारता हुआ वहाँ से भाग जाता।

कवाला का एक मित्र भी था; उसका नाम था खण्डा। कवाला ने खण्डा को एक दिन खनेत्तर से लौटते हुए रास्ते में पड़ा पाया था। वह उस समय भूख से विकल होकर चिल्ला रहा था। उसकी डाइन मां उसे रास्ते में ही छोड़कर कहीं भाग गई थी। कवाला उसे उठाकर अपने घर ले आया और पाल-पोसकर बड़ा कर लिया। खण्डा भी कवाला को बहुत चाहता था। कई बार जब खण्डा कवाला को उदास देखता तो चंचल दृष्टि से उसको ताकता और फिर पूँछ हिला-हिला कर इस तरह से चिल्लाता मानो कह रहा हो, "गूँगे भैया, उदास क्यों हो ? मेरी ओर देखो, मैं भी तुम्हारी तरह ही हूँ, बात-चीत करने में असमर्थ, परन्तु क्या मैं प्रसन्न चित्त नहीं रहता ? वह देखो, इस अखरोट की शाख पर कैसी सुन्दर चिड़िया बैठी है। लो, वह तो उड़ गई।" फिर खण्डा भोंकते-भोंकते कवाला के पाँव के चारों ओर नाचने लगता, यहाँ तक कि कवाला का दुःख दूर हो जाता। उसका मुख खिल उठता, और वह अपने प्यारे साथी की पीठ को ज़ोर से थपक कर अपने पास बिठा लेता। उस समय उसकी आंखें मानो स्पष्ट रूप से कह रही होतीं, "खण्डा भैया ! तुम बहुत चंचल हो, और बहुत प्यारे भी हो। चंचल तो अर्दाई और जोशी भी हैं, परन्तु वे प्यारी नहीं हैं। और नैना में चंचलता नहीं है परन्तु वह बहुत प्यारी है। क्या तुम नैना को नहीं जानते ? वह हमारे गाँव के नम्बरदार की लड़की है। वह जो उस दिन अपने बाप के साथ यहाँ आई थी। नहीं जानते तुम उसे ? नीच कुत्ते ! चलो हटो यहाँ से !"

और खण्डा गुर्रा कर कहता, "मैं नम्बरदार की क्या परवाह करता हूँ, और मैं किसी नैना-वैना को नहीं जानता, और तुम मुझे अपने पास

से नहीं हटा सकते। मैं जंगल के भेड़िये के समान हूँ, मुझे ऐसा-वैसा कुत्ता न समझना, समझे ?"

जिस दिन कबाला ने नैना को पहले-पहल देखा था उस दिन धुन्ध छाई थी—एक हल्की, बारीक धुन्ध जो देवदारु के वृक्षों को अपने सफेद आँचल में लपेटे हुए, नीचे पृथ्वी-तल से लेकर ऊपर आकाश में फैले हुए बादलों तक भरी हुई थी। प्रातःकाल का समय था, चारों ओर पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई थी; न तो पवन ही गतिवान थी और न ही पक्षियों की बोलियां सुनाई देती थीं। इस गूंगी सृष्टि में कबाला पहाड़ी झरने से स्नान करके लौट रहा था कि रास्ते में उसने धुन्ध की देवी को एक चट्टान पर खड़े हुए देखा—हां हां, वह धुन्ध की देवी ही तो थी, लम्बा क़द, सर से पांव तक सफेद साड़ी में लिपटी हुई। कबाला को उसका चेहरा ऐसा लगा मानो ओस की बूंदों से धुला हुआ गुलाब का फूल धुन्ध की हल्की और सफेद लहरों में तैर रहा है। कबाला ठिठक कर खड़ा हो गया और आश्चर्य से मुँह खोले हुए उसे निहारने लगा। धुन्ध की देवी ने कहा, "मैं रास्ता भूल गई हूँ; मैं नैना हूँ—गांव के नम्बरदार की बेटी—मुझे गाँव का रास्ता दिखला दो।"

कबाला कुछ क्षणों तक मूर्ति के समान निश्चल खड़ा रहा। फिर वह धीरे-धीरे पीछे मुड़ गया और नैना को हाथ के संकेत से अपने साथ आने को कहा। धुन्ध गहरी होती जा रही थी। वे साथ-साथ चल रहे थे और कबाला सोच रहा था, "तुम नैना हो, तुम धुन्ध की देवी हो और रास्ता भूल कर आ गई हो, रास्ता!" कबाला नैना के पांव की ओर देखने लगा। नन्हें से, प्यारे-प्यारे कोमल पांव! हैं! वह चप्पल क्यों नहीं पहने हुए है? अच्छा, अच्छा, तो वह अब उसके लिए एक ऐसी बढ़िया चप्पल तैयार करेगा कि धुन्ध की देवी उसे पहन कर हर्षित हो उठेगी। पतला-सा हल्का-सा चमड़ा, और उस पर बारीक रुपहले तारों के फूल! चप्पल बहुत सुन्दर और कोमल होगी—जैसे नैना के पांव। उसके मन में आया कि वह देवी के चरण-कमलों पर अपना सर

रख दे और कह दे कि अपने पुजारी को इनकी पूजा कर लेने दो ! फिर सहसा उसे याद आया कि वह तो कुछ भी नहीं कह सकता। और वह इस महान् भेद को अपने हृदय के अन्तस्तल में छुपाने के लिए तैयार हो गया। अब चलते-चलते उसे प्रतिक्षण यह डर लगने लगा कि कहीं नैना उससे कोई बात न पूछ बैठे और फिर उसे पता लग जायेगा कि वह गूंगा है—प्रकृति ने उसे सदा के लिए मौन कर दिया है, मौन और व्यर्थ। कदाचित्, जन्म के समय वह एक बार चिल्लाया होगा, परन्तु अब तो उसमें बोलने की शक्ति लेशमात्र भी विद्यमान नहीं थी। उसकी जीवन-वीणा नितान्त मौन एवं गतिहीन थी—मृत्यु के समान !

गाँव की सीमा के निकट पहुँच कर कवाला रुक गया और हाथ से धुन्ध में लिपटे हुए रास्ते की ओर संकेत कर दिया। नैना ने क्षण भर के लिए रुक कर पूछा, "तुम कौन हो, कहाँ से आये हो ? मैंने पहले तुम्हें कभी गाँव में नहीं देखा ? तुम कहां रहते हो ?"

कवाला पर मानो बिजली गिर पड़ी। उसने आँखें नीची करके पहाड़ की चोटी की ओर संकेत कर दिया। कुछ क्षणों के पश्चात् नैना बोली, "ओह— ! तुम हो कवाला !"

कवाला देर तक गर्दन झुकाए हुए खड़ा रहा। और जब वह चलने लगी तो वह अपनी बड़ी-बड़ी विस्मयपूर्ण, हरिण की सी आँखों से नैना की ओर देखने लगा। वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु वह क्या कहना चाहता था ? वह कह ही क्या सकता था ? काश ! वह कुछ कह सकता !

नैना रास्ते पर चलने लगी; सफेद धुन्ध में उसके लुप्त होते हुए शरीर को देखकर कवाला की आँखों में आंसू भर आये।

जिस दिन नैना रास्ता भूल कर कवाला के मन में उतर आई थी उस दिन से कवाला को ऐसा प्रतीत होने लगा था मानो पृथ्वी के सारे सोए हुए सपने जाग उठे हैं, महण्डर के स्वर्गीय दृश्यों में एक नई छटा, एक नई मोहिनी भर गई है, और उसके अन्तस्तल में हर्ष और विषाद

की सीमायें फैलते-फैलते एक-दूसरे के संग मिल गई हैं। यदि वह गूँगा नहीं होता तो सम्भव है उसके भाव इतने प्रचण्ड, इतने उग्र नहीं होते; परन्तु अब जब उसकी भावनाओं की भयंकर बाढ़ ने अपने चारों ओर प्रकृति के लगाये हुए लौह-बन्धन को देखा तो उसकी आत्मा तड़प उठी, उसका मर्म पिघल उठा, और वह तड़प, वह कवित्व उसकी बनाई हुई जूतियों और चप्पलों में ढलने लगे। उन दिनों उसने जूतियों और चप्पलों के ऐसे-ऐसे सुन्दर और हृदयहारी नमूने तैयार किये कि शीघ्र ही उसकी ख्याति चारों ओर फैल गई, और लोग दूर-दूर से आकर उससे जूते और चप्पलें बनवाने लगे। खनेत्तर के मोची ने संकेतों द्वारा उससे कहा कि अब जब कि तुम्हारी दूकान चमक उठी है, तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए। वह अब बिना कुछ लिये दिये कबाला के साथ अर्दाई अथवा जीशी को ब्याह देने के लिये तैयार था। अर्दाई और जीशी ने भी तो अब उसको तंग करना छोड़ दिया था। अब उनके मन में कबाला के प्रति सम्मान का भाव था—और शायद सम्मान की भावना के साथ-साथ कुछ और भी भावना सम्मिश्रित थी। अब उनके नेत्रों में घृणा का स्थान चंचलता ने ले लिया था। शायद वे दोनों अपने-अपने मन में कबाला को अपना भावी पति समझने लगी थीं। अब उन्हें ऐसा लगने लगा था कि कबाला में पुरुषत्व के सारे गुण विद्यमान हैं। उसके लम्बे गठीले शरीर को देखकर उनके मन में श्रद्धा का भाव उत्पन्न होने लगा था और उसकी देवताओं जैसी आकृति तथा विशाल नेत्र उन्हें बहुत अच्छे लगने लगे थे। जिस प्रकार तालाब में कागज की एक हल्की-सी नाव डाल देने से लहरें उत्पन्न हो जाती हैं और वे बढ़ती हुई, बड़े-बड़े घेरे बनाती हुई, चारों ओर फैलती चली जाती हैं, ठीक उसी प्रकार कबाला के प्रेम की नाव ने भी महण्डर के निस्तब्ध, निश्चल वातावरण में हिलोरें उत्पन्न कर दी थीं और लहरों ने चारों ओर फैलकर सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट [illegible] या था। कबाला यद्यपि अपने मुंह से किसी भी व्यक्ति के :

ौर कह दे कि अपने पुजारी को इनकी पूजा कर लेने दो ! फिर
उसे याद आया कि वह तो कुछ भी नहीं कह सकता । और वह
हान् भेद को अपने हृदय के अन्तस्तल में छुपाने के लिए तैयार
या । अब चलते-चलते उसे प्रतिक्षण यह डर लगने लगा कि कहीं
उससे कोई बात न पूछ बैठे और फिर उसे पता लग जायेगा कि वह
ा है—प्रकृति ने उसे सदा के लिए मौन कर दिया है, मौन और व्यर्थ ।
ाचित्, जन्म के समय वह एक बार चिल्लाया होगा, परन्तु अब तो
समें बोलने की शक्ति लेशमात्र भी विद्यमान नहीं थी । उसकी जीवन-
ोणा नितान्त मौन एवं गतिहीन थी—मृत्यु के समान !

गाँव की सीमा के निकट पहुँच कर कबाला रुक गया और हाथ से
धुन्ध में लिपटे हुए रास्ते की ओर संकेत कर दिया । नैना ने क्षण भर
के लिए रुक कर पूछा, "तुम कौन हो, कहाँ से आये हो ? मैंने पहले
तुम्हें कभी गाँव में नहीं देखा ? तुम कहां रहते हो ?"

कबाला पर मानो बिजली गिर पड़ी । उसने आँखें नीची करके पहाड़
की चोटी की ओर संकेत कर दिया । कुछ क्षणों के पश्चात् नैना बोली,
"ओह— ! तुम हो कबाला !"

कबाला देर तक गर्दन झुकाए हुए खड़ा रहा । और जब वह चलने
लगी तो वह अपनी बड़ी-बड़ी विस्मयपूर्ण, हरिण की सी आँखों से
नैना की ओर देखने लगा । वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु वह क्या
कहना चाहता था ? वह कह ही क्या सकता था ? काश ! वह कुछ कह
सकता !

नैना रास्ते पर चलने लगी; सफेद धुन्ध में उसके लुप्त होते हु
शरीर को देखकर कबाला की आँखों में आंसू भर आये ।

जिस दिन नैना रास्ता भूल कर कबाला के मन में उतर आई
उस दिन से कबाला को ऐसा प्रतीत होने लगा था मानो पृथ्वी के स
सोए हुए सपने जाग उठे हैं, महण्डर के स्वर्गीय दृश्यों में एक नई
एक नई मोहिनी भर गई है, और उसके अन्तस्तल में हर्ष और

की सीमायें फैलते-फैलते एक-दूसरे के संग मिल गई हैं। यदि वह गूँगा नहीं होता तो सम्भव है उसके भाव इतने प्रचण्ड, इतने उग्र नहीं होते; परन्तु अब जब उसकी भावनाओं की भयंकर वाढ़ ने अपने चारों ओर प्रकृति के लगाये हुए लौह-वन्धन को देखा तो उसकी आत्मा तड़प उठी, उसका मर्म पिघल उठा, और वह तड़प, वह कवित्व उसकी वनाई हुई जूतियों और चप्पलों में ढलने लगे। उन दिनों उसने जूतियों और चप्पलों के ऐसे-ऐसे सुन्दर और हृदयहारी नमूने तैयार किये कि शीघ्र ही उसकी ख्याति चारों ओर फैल गई, और लोग दूर-दूर से आकर उससे जूते और चप्पलें वनवाने लगे। खनेत्तर के मोची ने संकेतों द्वारा उससे कहा कि अब जव कि तुम्हारी दूकान चमक उठी है, तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए। वह अब विना कुछ लिये दिये कवाला के साथ अर्दाई अथवा जीशी को व्याह देने के लिये तैयार था। अर्दाई और जीशी ने भी तो अब उसको तंग करना छोड़ दिया था। अब उनके मन में कवाला के प्रति सम्मान का भाव था—और शायद सम्मान की भावना के साथ-साथ कुछ और भी भावना सम्मिश्रित थी। अब उनके नेत्रों में घृणा का स्थान चंचलता ने ले लिया था। शायद वे दोनों अपने-अपने मन में कवाला को अपना भावी पति समझने लगी थीं। अब उन्हें ऐसा लगने लगा था कि कवाला में पुरुषत्व के सारे गुण विद्यमान हैं। उसके लम्वे गठीले शरीर को देखकर उनके मन में श्रद्धा का भाव उत्पन्न होने लगा था और उसकी देवताओं जैसी आकृति तथा विशाल नेत्र उन्हें वहुत अच्छे लगने लगे थे। जिस प्रकार तालाव में कागज़ की एक हल्की-सी नाव डाल देने से लहरें उत्पन्न हो जाती हैं और वे वढ़ती हुई, वड़े-वड़े घेरे वनाती हुई, चारों ओर फैलती चली जाती हैं, ठीक उसी प्रकार कवाला के प्रेम की नाव ने भी महण्डर के निस्तब्ध, निश्चल वातावरण में हिलोरें उत्पन्न कर दी थीं और लहरों ने चारों ओर फैलकर सवका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। कवाला यद्यपि अपने मुंह से किसी भी व्यक्ति के सामने अपना

त नहीं कर सका था तथापि खण्डा को, नैना की सहेलियों को
यद गाँव के प्रत्येक वासी को, इस बात का पता लग गया था।
ना की सहेलियां उसे इस बात पर छेड़तीं तो नैना को कबाला
हुत क्रोध आता। वह उसे मूर्ख, दुष्ट, पागल, चमार इत्यादि न
क्या-क्या कह डालती।

कबाला बेचारे को क्या पता था कि नैना का पिता बहुत दिन पहले
उसे ताशीपुर के बौद्ध सरदार को सौंपने का निश्चय कर चुका है।
मला तीन सहस्र रुपयों में तय हुआ था। ताशीपुर का सरदार बड़ा
लोभी था—वह तो दो सहस्र से अधिक रुपया देने का नाम भी न
लेता था। इस पर नैना के पिता ने साफ़-साफ़ कह दिया था कि वह
अपनी प्यारी बेटी को नरक-कुंड में फेंकने के लिये तैयार नहीं है।
ताशीपुर नरक से कम नहीं था—ऊँचे-ऊंचे कठोर भयानक पर्वत, कठिन
दुर्गम पथ, आठों पहर वर्षा, हिम-पात—ताशीपुर सचमुच बरफ़ का
नरक था। उसने दृढ़तापूर्वक कह दिया था कि वह अपनी कोमल बेटी
को, उस अबोध बालिका को, ताशीपुर के बौद्ध सरदार के साथ कभी
नहीं ब्याहेगा। तीन सहस्र रुपये की भेंट होने पर उसे अपना मत
बदलना पड़ा।

उन्हीं दिनों नैना दो बार अपनी चप्पलों का माप देने के लिए
कबाला की दूकान पर आई थी। यह बात कबाला को आनन्द-विभोर
करने के लिये पर्याप्त थी। नैना के लिए उसने इतने सुन्दर चप्पल
तैयार किये थे कि उन्हें देखकर गांव की युवतियां ईर्ष्या के मारे जलभु
गई थीं। नैना के पैरों को छूकर—जिन्हें प्रकृति ने स्वयं अपने हाथ
गढ़ा था—कबाला के मन में यह अभिलाषा आग की भाँति भ
उठी थी कि वह इन दो कमल पुष्पों को उठाकर अपने हृदय में
ले। नैना के पिता ने कबाला से प्रसन्न होकर उसको वचन दिय
कि वह बौद्ध-पंचों से कहकर उसके वंश को दण्ड के शेष भाग से
देगा, और सम्भवतः शीघ्र ही कबाला को फिर अपने गाँव में

बसने का अवसर मिल जायगा। यह सुनकर नैना की आँखें भी हर्षो-त्फुल्ल हो गई थीं और उसने बहुत विनम्र तथा अनुरोधपूर्वक अपने पिता से कहा था कि वह अवश्य ही बेचारे कबाला पर यह कृपा कर दें। यह बातें याद करके जूतियाँ गांठते-गांठते कबाला अपने आप ही मुस्करा पड़ता था।

हां, वह सचमुच बहुत प्रसन्न था। वह दिन भर सुन्दर-सुन्दर चप्पलें बनाता, सन्ध्या समय खण्डा के साथ खेलता, और प्रातः तथा सन्ध्या समय अखरोट के पेड़ के नीचे खड़ा होकर दूर, नीचे घाटी की सुनहली पगडंडी पर से जाती हुई देव-कन्याओं को देखता। उनमें नैना भी होती थी—पीले आंचल वाली नैना।

और फिर एक दिन अकस्मात् गाँव के लुहार ने कबाला को बताया कि गाँव के नम्बरदार की पुत्री का विवाह ताशीपुर के बौद्ध सरदार के साथ होने वाला है। उसने यह भी बतलाया कि विवाह-संस्कार अवन्तीपुर में होगा जो कि महण्डर और ताशीपुर के नीचे बीचोंबीच हिमाच्छादित पर्वतों के एक त्रिकोण के बीच में स्थित है, और विवाह-संस्कार अवन्तीपुर का माननीय बौद्ध पुजारी करायेगा। यह सूचना देकर लुहार कहने लगा, "नैना बड़े भाग्य वाली है जो इतने बड़े सर-दार से व्याही जायगी। ताशीपुर का सरदार एक राजा के समान है। और सुना है कि नैना के पिता ने सरदार से तीन सहस्र रुपया लिया है। अब यह बौद्ध पंच कहाँ सो गये हैं?" गांव का लुहार इसी प्रकार कुछ देर तक कबाला से बातचीत करता रहा और कबाला सर झुकाये हुए चप्पल में सूत के टांके लगाता रहा। लुहार बातें करके गाँव को लौट गया। थोड़ी देर बाद नम्बरदार का भेजा हुआ एक व्यक्ति वहाँ आ पहुँचा और कबाला से कहने लगा कि नम्बरदार ने सन्देश भेजा है कि नैना के विवाहोत्सव के लिये चप्पलों की एक जोड़ी कल सवेरे तक तैयार कर दे, क्योंकि उन्हें कल सवेरे ही अवन्तीपुर के लिए प्रस्थान करना है। परसों नैना का विवाह है।

...का विवाह ? कवाला के मन में पहले तो यह विचार उत्पन्न ...ह वह चप्पल बनाने से इन्कार कर दे, नम्बरदार के भेजे हुए ...वित का गला घोट दे, नम्बरदार को जान से मार डाले और इसी पहाड़ की चोटी से गिरकर नीचे की चट्टान से टकराकर ...। सिर तोड़ डाले। परन्तु बड़े यत्न के पश्चात् उसने अपने भावों ... विचारों को अपने वश में किया। क्रोध, निराशा और उमड़ते हुए ...सुओं को बलपूर्वक दबाकर उसने नम्बरदार के आदमी को संकेत ...रा कहा कि नम्बरदार की आज्ञा का अवश्य पालन करेगा। उसके ...स इस समय रुपहले तार नहीं हैं, वह उन्हें खनेत्तर से ले आयेगा ...और प्रातःकाल तक चप्पल अवश्य तैयार कर देगा।

परन्तु अगले दिन जब नम्बरदार का आदमी चप्पल लेने आया तो ...वाला ने हाथ जोड़कर उससे संकेत द्वारा कहा कि चप्पल तो तैयार नहीं ...। वह खनेत्तर गया था, परन्तु उसे रुपहले तार नहीं मिल सके और उसे वहाँ से निराश लौटना पड़ा। उसने संकेतों द्वारा ही उपरोक्त बात पर बहुत खेद प्रकट किया और साथ ही अपनी विवशता भी। जब नम्बरदार के आदमी ने यह सब बातें जाकर नम्बरदार को बतलाईं तो वह बहुत लाल-पीला हुआ। उसने अभागे चमार को बहुत सारी गालियाँ दे डालीं—"कमीना, दुष्ट, शैतान कहीं का, बदमाश गूंगा, वह अपने को बहुत चालाक समझता है क्या ? क्या वह समझता है कि चप्पल के बिना विवाह रुक जायगा ? मैं उस पाजी को विवाह के पश्चात् ठीक करूँगा और देखूंगा कि महण्डर के लोग तो क्या, आस-पास के किसी गाँव का कोई भी व्यक्ति इसके अपवित्र हाथों का बना हुआ जूता न पहने। बस मैं अपनी पुत्री के विवाह से निवृत्त हो जाऊँ फिर देखूंगा उसे अच्छी तरह।" नम्बरदार बहुत देर तक इसी प्रक... चिल्लाता रहा।

कुछ देर के पश्चात् कवाला ने उसी अखरोट के पेड़ के नीचे ... होकर देखा कि गाँव के नर-नारी अवन्तीपुर के मार्ग की ओर एक...

हो रहे हैं— गाँव के नम्बरदार की उस शुभ यात्रा पर मंगल-कामना करने तथा उसे विदा देने के लिए। थोड़ी देर में पवित्र मन्त्रों का पाठ होने लगा और नफीरी ढोल इत्यादि बजने लगे। नम्बरदार ने अपनी बेटी नैना तथा अपने अन्य कुटुम्बियों और गाँववासियों की शुभ कामनाओं के साथ अवन्तीपुर की ओर प्रस्थान किया। कबाला देर तक खड़ा देखता रहा—यहां तक कि सामान से भरे हुए खच्चर आदि भी मार्ग के अगले मोड़ से निकल कर लुप्त हो गए। अन्तिम खच्चर के ओझल होते ही कबाला की हृदय की गहराई से एक अत्यन्त वेदनापूर्ण आह निकली। तो क्या यही उसके प्रेम का अन्त है? परन्तु उसने सोचा, इससे अच्छे परिणाम की उसे आशा ही क्यों हुई? उसे अधिकार ही क्या था ऐसी आशा बाँधने का? वह चुपचाप सर झुकाए हुए अपने लकड़ी के घर में चला गया। खण्डा उसके पैरों के साथ चिपटने का प्रयास कर रहा था। कबाला ने क्रुद्ध होकर उसकी कमर पर एक दो ठोकरें जमा दीं। परन्तु बेचारा खण्डा चिल्लाया नहीं, अपितु अपने स्वामी को उदास निगाहों से देखता हुआ उसके पीछे-पीछे मकान के अन्दर चला गया। कबाला ने खाट पर बैठकर अपने चेहरे को दोनों हाथों से थाम लिया और खण्डा अपनी थूथनी उसके दोनों पैरों के बीच रखकर बैठ गया। बहुत देर के पश्चात् कबाला ने धीरे से खण्डा को उठा लिया और उसे गले चिपटाकर फूट-फूट कर रोने लगा— बेचारे गूंगे का अर्थहीन रुदन?

कुछ देर के पश्चात् जी हल्का होने पर सहसा उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी। उसने नैना के लिए चप्पल क्यों न तैयार कर दी? उसके पास चमड़ा भी था और रुपहले तार भी। यह उसने कैसी कमीनी बात कर डाली? फिर इसमें बेचारी नैना का क्या दोष था? क्या अब नैना बिना चप्पल पहने ही व्याही जायेगी?—नंगे पांव! कितनी घोर लज्जा की बात होगी यह! परन्तु वह तो अब भी उसके लिए ऐसी सुन्दर चप्पल तैयार कर सकता है कि देखने वालों को

...म हो जाए कि शायद ये कमल के दो पुष्प हैं। फिर उसने सोचा ...ह क्यों न उसके लिए अभी से चप्पल तैयार करने बैठ जाये। वह ...रात चलकर अगले दिन प्रातःकाल अवन्तीपुर पहुँच सकता है। ...ने निश्चय किया कि वह ऐसा ही करेगा और स्वयं अपने हाथों से ...ा के पदकमलों में दो कमल सदृश चप्पल पहनायेगा। यह विचार ...ाते ही वह चारपाई से उठ बैठा और अखरोट के नीचे बैठक ...मड़ा साफ करने में जुट गया।

सन्ध्या समय तक कबाला ने चप्पल तैयार कर डाली। उस समय पश्चिम दिशा में अन्तरिक्ष से लालिमा लुप्त हो चुकी थी। चारों ओर पहाड़ों पर काले-काले बादल उमड़ आये थे और सांस रोके हुए पहाड़ी का घेरा डाले हुए खड़े थे। तब धीरे से अंगड़ाई लेकर रात की रानी जाग उठी और घनघोर घटाओं को अपने चारों ओर देखकर मस्ती से नाचने लगी। उसके पायल की झंकार बौद्ध-मन्दिर के मंगोली बुर्जों और गांव की चित्रित छतों में कम्पन करती हुई प्रतीत होती थी। उसकी कलाइयों में पड़े हुए सुनहले कंकण बार-बार अपनी द्युति से पृथ्वी तथा आकाश को देदीप्यमान कर देते थे। इन्हीं के प्रकाश में गाँव के लुहार तथा कुम्हार ने देखा कि कबाला सिर झुकाए, बगल में कुछ दबाए और खण्डा को साथ लिए हुए अवन्तीपुर के टेढ़े-मेढ़े और दुर्गम रास्ते पर चला जा रहा है।

और लोग यह भी कहते हैं कि उस रात महण्डर की घाटी में एक भयंकर तूफ़ान आया। नम्बरदार के ऊँचे घर की चित्रित छत उड़ ग... और प्राचीन बौद्ध मन्दिर का बुर्ज टुकड़े-टुकड़े हो गया। उत्तरी हवा... के प्रबल झोंकों ने चारों ओर ओले बरसाये और फिर भयानक हिमप... हुआ, जिससे प्रातःकाल तक महण्डर, खनेत्तर और ताशीपुर की प... मालाएँ बर्फ़ की एक मोटी चादर में लिपट गईं। और दूसरे ... ताशीपुर के बौद्ध सरदार ने अपनी नवविवाहिता के साथ ताशीपु... बारात शहनाइयाँ बजाती हुई अवन्तीपु... ओर प्रस्थान किया।

बीच वाली ऊँची घाटी में से निकली तो बरातियों ने देखा कि घाटी में सफेद बरफ़ पर दूर तक पैरों के निशान पड़े हुए हैं और एक विशाल वृक्ष के नीचे एक अभागा पथिक मरा पड़ा है। उसका कुत्ता उसके पांव में मुँह दिए हुए अकड़ गया था, पथिक के हाथ उसकी छाती पर बंधे हुए थे और वह बड़ी मजबूती के साथ उनमें किसी वस्तु को पकड़े हुए थे—वह चप्पल का जोड़ा था जो पतले कागजी चमड़े का बना हुआ था और जिस पर चांदी के तारों से कमल के दो सुन्दर सफेद फूल कढ़े हुए थे।

: १२ :

गुलदुम

गाँव पहाड़ की चोटी पर था। चोटी नुकीली अवश्य थी परन्तु सूई की नोक तो थी नहीं कि उस पर दस-पन्द्रह घर भी सुविधा से न वनाए जा सकें। ये सब घर एक-दूसरे के साथ लगे-लगे एक-दूसरे का सहारा पाकर चट्टानों के ऊपर चढ़ते चले गए थे। सब से ऊँचे घर पर राजा साहव की पताका लहरा रही थी। ये घर राजा साहव के शिकारियों के थे। राजा साहव वर्ष में एक वार इस पहाड़ की रुख में शिकार खेलने आते थे। कभी-कभी ऐसा भी होता कि वे दो या तीन वर्ष तक इस ओर न आते, परन्तु शिकारियों की स्वामिभक्ति की यह दशा थी कि राजा साहव की अनुपस्थिति में भी वे कभी किसी जन्तु का शिकार न करते थे। जन्तु का अर्थ यहाँ सूअर, रीछ और चीतों से है अन्यथा वैसे तो शिकारी रात-दिन तीतर, जल-कुक्कड़, भट लोमड़ और खरगोश का शिकार किया करते थे और न क़रते तो खाते क्या ? पहाड़ पर जितनी भूमि खेती के योग्य थी वह सब सरकारी रुख में मिला ली गई थी। यह रुख पहाड़ की चोटी को छोड़कर—जहां केवल चट्टानें ही चट्टानें दृष्टिगोचर होती थीं—नीचे की तलहटी से नाले त[illegible] फैली हुई थी। नाले के दूसरे किनारे से दूसरा पहाड़ आरम्भ होता [illegible] जो विल्कुल वीहड़, वनस्पति-रहित था। जिसके पच्चीस मील आगे [illegible]

शहर था जहां राजा साहब के महल थे। इस गाँव से वह शहर इतना दूर था कि अब्दुल्ला शिकारी के अतिरिक्त, जो हर तीसरे-चौथे महीने वहाँ शिकारियों का वेतन प्राप्त करने जाया करता था, किसी ने वह शहर न देखा था। उसकी नदी पर एक पुल था, पुल के उस पार एक सुन्दर गढ़ था, जिसकी बुर्जियों और झरोखों में नारंगी वर्दियां पहने सन्तरी खड़े रहते थे और जिसके बागों में विलक्षण फलों के वृक्ष थे। उनमें ऐसे वृक्ष नहीं थे जैसे गांव की रख में थे अर्थात् बटंग और जंगली नाशपातियों और पीले रंग के सेबों और सुनहरे अखरोटों के वृक्ष या चीड़, देवदार और ब्यार के विशाल वृक्ष। वे तो बहुत अद्भुत से, छोटे-छोटे वृक्ष थे, जिनकी डालियां रंग-बिरंगे फलों के बोझ से झुकी हुई थीं और घास के टुकड़ों में बड़े मनोहर फूलों की क्यारियां थीं। जब कभी बूढ़ा शिकारी अब्दुल्ला आग तापते हुए अपनी नीली-नीली आंखें घुमा-कर राजा साहब के शहर की सज-धज का वर्णन करता तो शिकारियों के हृदयों में विस्मय और उत्सुकता की एक लहर दौड़ जाती और उनकी फैली-फैली पुतलियों में आग की लपटें नाचने लगतीं क्योंकि अब्दुल्ला के अतिरिक्त कोई ऐसा न था जिसने वह शहर देखा हो। शिकारियों को राजा साहब के शहर से इधर वाले कस्बे में जाने का तो साल में दो-चार बार अवसर मिलता था—नमक लाने के लिए, गुड़ लाने के लिए, चाय, साबुन कपड़ा लाने के लिए। किन्तु शहर जाने की उन्हें अब तक आवश्यकता न पड़ी थी और वैसे भी वे शहर जाते हुए घबड़ाते थे। कितने अपरिचित से थे उस कस्बे के लोग? ऐसे देखते थे जैसे अभी झपट्टा मार कर कुछ छीन लेंगे। वे दृष्टियां, वे चेहरे, पहाड़ी शिकारियों को अच्छे न लगते थे।

जहां यह रख समाप्त होती थी और जहाँ देवदार के अन्तिम वृक्ष आकाश की ओर देखते हुए रुक जाते थे, वहां पर राजा साहब के वन-विभाग के आदेश से देवदार के छोटे-छोटे पौधे उगाए हुए थे। इन पौधों की रखवाली भी इन्हीं शिकारियों के जिम्मे थी कि वे इन देवदार के

हें-नन्हें पौधों को पशुओं के प्रहार से बचाएं। इन पौधों के ऊपर
ट्टानों की वह श्रेणी आरम्भ होती थी जो ऊपर चोटी तक जाती
ी। इस श्रेणी के आरम्भ होते ही मार्ग में वह चश्मा आता था जो
एक अँधेरी खोह में था और जिसका जल इतना शीतल था कि मनुष्य
कठिनता से इसके दो घूंट पी सकता था। इस चश्मे से ऊपर चोटी से
गाँव तक जाने के लिए शिकारियों ने पत्थरों को काट कर सीढ़ियां
बनाई थीं जो बल खाती हुई चट्टानों में घूमती हुई दस हज़ार फुट
गहरीखाइयों से बचती हुई गांव में चली गई थीं, जहां एक घर के ऊपर
दूसरा घर, उसके ऊपर तीसरा घर और तीसरे के ऊपर चौथा घर था।
वे एक-दूसरे को सम्भाले हुए, एक दूसरे को ऊँचा करते हुए अन्तिम घर
से जा मिलते थे जो अब्दुल्ला का घर था, जिसके ऊपर राजा साहब की
पताका लहराती थी।

यहाँ खड़े होकर दृष्टि घुमाने से चारों दिशाओं में पर्वत-श्रेणियां
गिरती-पड़ती दृष्टिगोचर होती थीं। उत्तर में कुल्ला पर्वत, जहां सदैव
मेघ मंडराते रहते हैं। पूर्व में हिरनी की गगनचुम्बी चोटी जो बादलों
का वक्ष भेद कर ऊपर सूर्य की स्वर्णमयी गेंद से खेलती रहती है।
दक्षिण में आफ़राज़ का पहाड़ जो काले-काले वनों से ढका हुआ है और
पश्चिम में गुरसमन्द का नग्न पहाड़ जिसके परे कस्बे की घाटी है और
जिससे परे एक और ऊँचा पर्वत है जिसकी बरफ़ ग्रीष्मकाल में भी
नहीं पिघलती और जिसके परे वह छोटी-सी सुन्दर घाटी है जहां राज
साहब रहते हैं, और जहां शिकारियों में से अब्दुल्ला के अतिरिक्त को
नहीं गया।

परन्तु इस समय अब्दुल्ला के घर कुछ दिखाई नहीं दे रहा थ
चारों ओर वह घनी शीतल धुन्ध फैली हुई थी जो आकाश से कट-
कर बर्फ़ के गाले बनकर निस्तब्ध पृथ्वी पर गिरती जाती है।
समय न पहाड़ दिखाई देते थे न नीचे के घर, न रुख न नाला।
और आकाश पर भी एक धुन्ध छाई हुई थी और बर्फ़ के हल्के-

कोमल गाले गिर रहे थे। चारों ओर पूर्ण निस्तब्धता छाई थी और कोई शब्द सुनाई न देता था और दूर कहीं से फिर सहसा तूफ़ान का थपेड़ा 'हुआऊ ऊ' करता हुआ आता और वर्फ़ के गाले अन्धाधुन्ध एक दिशा में गिरने लगते और कभी वायुमण्डल में भँवर बनाकर नृत्य करने लगते और कभी एक दिशा में जाते और कभी दूसरी दिशा में, और कभी विभिन्न दिशाओं से आते-जाते एक-दूसरे से गले मिलने लगते। और तूफ़ान का ऑरकैस्ट्रा ऊँचा हो जाता और सहसा आकर झन से रुक जाता। और तूफ़ानी थपेड़ा 'हुआऊ ऊ' का शोर मचाता दूर कहीं दूसरी पर्वत-श्रेणी पर चला जाता और यहाँ वर्फ़ के गाले पुनः निरन्तर गिरते रहते और वर्फ़ ऐसे जमने लगती जैसे कोई कश्मीरी युवती धरती के करघे पर श्वेत गद्दर ग़लीचा बुन रही हो।

अब्दुल्ला का छोटा बेटा अज़ीज़ द्वार खोलकर छप्पर से आगे ढलकती हुई वर्फ़ को नीचे गिराने जा रहा था कि उसे सामने धुन्ध में नूरनशाँ का चेहरा दिखाई दिया, जैसे झील की लहरों पर कमल का नव-विकसित फूल घूनता हुआ सामने आ जाए और अज़ीज़ को देख-कर उल्लास से खिल उठे। अज़ीज़ उसे देखकर वर्फ़ गिराए बिना द्वार के भीतर आ गया और बकरियों को एक कोने में बाँधने लगा। नूरनशाँ ने द्वार पर आकर कहा—"मैं चश्मे तक जा रही हूँ। मेरे साथ कौन चलेगा?"

अज़ीज़ की बहन चश्मे से पानी ले आई थी। अज़ीज़ का बड़ा भाई अमीन किसी काम में व्यस्त था। अज़ीज़ की माँ रोटी पका रही थी। बढ़ा अब्दुल्ला आग ताप रहा था। अज़ीज़ बकरियां बाँधने में लगा रहा। सब लोग चुपचाप काम करते रहे मानो किसी ने नूरनशाँ को सुना ही नहीं। अज़ीज़ ने केवल एक क्षण के लिए प्रतीक्षा की। दूसरे क्षण वह द्वार पर था।

अज़ीज़ के बड़े भाई ने कहा—"बकरियां तो बाँधते जाओ।"

अज़ीज़ ने द्वार पर लटकते हुए बोरिये को घसीट कर अपने सिर

पर एक तिकोनी टोपी बनाकर ओढ़ लिया और नूरनशाँ के साथ सीढ़ियाँ उतरने लगा।

अब्दुल्ला उठकर द्वार पर आ गया। वहाँ से उसने एक क्षण के लिए अजीज और नूरनशाँ की पीठ देखी—केवल एक क्षण के लिए। दूसरे क्षण वे एक छलावे की भांति धुन्ध में विलीन हो गए। अब्दुल्ला दृष्टि झुका कर पत्थर की सीढ़ियों पर अजीज़ और नूरनशाँ के पग देखने लगा जो वर्फ़ में बड़ी सुन्दरता से अङ्कित थे—अजीज़ के मरदाने पाँव, नूर के छोटे-छोटे जनाने पाँव। फिर दोनों के पग विलीन होते गए। वर्फ़ गिरती गई, पग मिटते रहे, मिट गए। अब्दुल्ला ने एक झुरझुरी-सी ली और अन्दर आकर पुनः आग तापने लगा।

अजीज़ की माँ मकई की रोटी सेंकते हुए बोली—"आज झक्कड़ तेज़ है।"

अमीन, अजीज़ का बड़ा भाई हँसा।

अजीज़ की बहिन विस्मित होकर उसकी ओर ताकने लगी। घर में बड़ा भाई किसी को भी प्रिय न था। सब अजीज़ को चाहते थे।

बहिन की निगाहें देखकर अमीन लज्जित-सा हो गया। फिर उसने अपनी बहिन से बड़े कटु स्वर में कहा, "उठकर बकरियाँ तो बाँध दे। इस तूफ़ान में एक बकरोटा भी बाहर निकल गया तो अजीज़ का बच्चा ही उसे ढूँढ़कर लाएगा। मैं तो बाहर जाऊँगा नहीं।"

सहसा तूफ़ान का एक थपेड़ा बड़े वेग से अन्दर आया। उसने सारे घर में चक्कर लगाया, आले में रखा हुआ दीया नीचे गिराया, दो अलग-अलग रखी हुई मटकियों को आपस में टकराया, चूल्हे में धूआँ ही धुआँ किया और फिर प्रस्थान करते हुए द्वार के पट बड़े वेग से बन्द करता हुआ 'हुआऊ ऊ' करता हुआ भाग गया। उसका विलीन होता हुआ स्वर सुदूर पर्वत-श्रेणियों की ओर जाता हुआ प्रतीत हुआ।

अब्दुल्ला ने गरज कर कहा—"यह द्वार किसने खोला था?"

अजीज़ का भाई बोला—"अजीज़ ने।"

"तो फिर तूने वन्द क्यों नहीं किया ?" अब्दुल्ला ने और गरज कर कहा—"हज़ार वार कहा है, दरवाज़ा वन्द रखा करो। यह आफ़राज़ के पहाड़ों से आया हुआ तूफ़ान है। द्वार वन्द नहीं रखोगे तो एक दिन छप्पर तक उखाड़ कर ले जायगा। अव इस तूफ़ान में वह हराम-ज़ादी पानी भरने गई है। मैं पूछता हूँ इस वर्फ़ीले झक्कड़ में प्यास किसे लगती होगी ?"

अज़ीज़ की मां कोमल स्वर में वोली, "उसके घर में पानी न होगा।" नूरनशाँ उसे वहुत पसन्द थी।

"मैं सव जानता हूँ, ये सव वहाने हैं।"

अज़ीज़ की माँ ने एक मधुर उसास भर कर कहा, "हां, अव इन दोनों का निकाह कर देना चाहिए।"

अज़ीज़ की अविवाहित वहन के वड़े-वड़े नेत्रों की पुतलियां फैलती गईं और वह देर तक चूल्हे में जलते हुए लाल अंगारों को देखती रही। अज़ीज़ के वड़े भाई ने क्रोध से दांत पीस लिये। वह भी अवि-वाहित था और नूरनशां से प्रेम करता था जो अज़ीज़ से प्रेम करती थी जो उसका छोटा भाई था। वह द्वार पर जाकर खड़ा हो गया जहाँ केवल धुन्ध ही धुन्ध दिखा पड़ती थी।

उसे अन्धे तूफ़ान की धुन्ध में नूरनशाँ और अज़ीज़ के पग सीढ़ियां उतरते जा रहे थे। यह संकटपूर्ण फैलता हुआ पथरीला रास्ता जो वल खाता हुआ नीचे जा रहा था, कई भयानक मोड़ों और खाइयों के भया-वने किनारों से गुज़रता था। इस समय धुन्ध और वर्फ़ में चलना और भी कठिन हो रहा था। हर पग फूँक-फूँक कर रखना पड़ता था। वर्फ़ के गाले कभी तो आंखों में घुस जाते, कभी नाक में, कभी मुँह में। ऐसी स्थिति में वात क्या हो सकती है ? फिर नूर और अज़ीज़ अपने शरीरों के स्पर्श की मूक भाषा में वातें किये जा रहे थे। वहाँ वे अलग अलग चल रहे थे। यहाँ इस मोड़ पर अज़ीज़ ने नूर का हाथ थाम लिया। इस स्थान पर नूर ठहर गई और उसने अज़ीज़ के कन्धे पर

अपना हाथ रख दिया। यहाँ पर वह गहरी खाई आई थी जहाँ अफ़-जल शिकारी गिर कर मर गया था। नूर ने सिहर कर सांस अन्दर खींच ली और अजीज ने दृढ़ता से अपना हाथ उसकी कमर में डाल दिया और उसे घुमाकर नीचे ले आया। यह मार्ग सुगम था। यहां दोनों अलग अलग होकर चलने लगे और नूर एक नाचती हुई हरिणी की भांति चौकड़ियां भरती हुई तीव्रता से नीचे उतर गई। फिर आगे जाकर रुक गई। अजीज ने हौले से उसे थाम लिया। उँगलियों के स्पर्श से बर्फ़ में दबी हुई, निद्रित मधुर भावनाएँ जाग्रत हो उठीं और एक लौ की भांति भड़क उठीं, जैसे चक़माक़ के पत्थरों से चिंगारी प्रस्फुटित होती हो। नूर ने अपना हाथ अलग कर लिया। अब फिर वर्फ़ उसी प्रकार गिर रही थी। उसी प्रकार चलते-चलते वे चट्टानों की उस खोह में पहुँच गए जहां चश्मे का उद्गम स्थान था। यहां पहुँच कर नूर ने एक लम्बी सांस भर कर घड़ा सिर से उतार कर चश्मे के किनारे रख दिया। अजीज ने कहा—"ऐसे तूफ़ान में आने की क्या आवश्यकता थी ?"

नूरनशाँ ने कहा—"दो दिन से तुम्हें देखा नहीं था।" नूरनशाँ के नेत्रों में शिकायत थी। उसके अधरों के कोने में कम्पन था।

अजीज का स्वर अत्यन्त कोमल हो गया। वह बोला, "तुम्हारे बालों में वर्फ़ है ?"

नूर के अस्त-व्यस्त केशों में वर्फ़ थी। उसके नाज़ुक ठिठुरते हुए कन्धों पर वर्फ़ थी। उसकी ओढ़नी की सलवटों में बर्फ़ थी और उसके उज्ज्वल श्वेत मुख पर वर्फ़ थी। अजीज ने उसके केशों से बर्फ़ गिराई, उसके नाज़ुक कन्धों से वर्फ़ गिराई, उसकी ओढ़नी की सलवटों से बर्फ़ गिराई और फिर नूर एक कंपकंपाती हुई फ़ाख़ता की भांति उसकी वलिष्ठ भुजाओं में आ गई और उसके कन्धे से लगकर बड़ी क्षीण वाणी में कहने लगी—"अमीन कहता है अगर मैंने तुमसे शादी की तो वह हम दोनों को गोली मार देगा।"

अजीज की भुजाएँ नूर के कन्धों पर कस गईं। उसने अत्यन्त

विश्वास और निश्चिन्तता से कहा—"तुम घबराओ नहीं। गोली मारना मैं भी जानता हूँ।"

अज़ीज़ ने इतना कहकर नूरनशाँ को चूम लिया—एक बार, दो बार। तीसरी बार जब वह उसे चूम रहा था तो सहसा उनके कानों में किसी के चहकने का शब्द आया। दोनों घबराकर अलग-अलग हो गये।

अब फिर निस्तब्धता थी।

"कौन था ?"

कोई नहीं था। चारों ओर धुन्ध थी और निस्तब्धता थी और सन्नाटा था और वे दोनों अकेले थे।

"तुमने आवाज़ सुनी ?" अज़ीज़ ने पूछा।

"हाँ" नूर ने काँपते हुए कहा।

"कोई नहीं था।" अज़ीज़ ने एक दीर्घ विराम के पश्चात् कहा। "हमारा भ्रम था।" और इतना कहकर उसने नूरनशाँ को फिर अपनी भुजाओं में ले लिया। सहसा फिर कोई चहका।

अरे !

एक छोटी-सी ठिठुरती हुई गुलदुम अपने पंख फड़फड़ाती हुई नूरनशां के सिर पर आकर बैठ गई और नूरनशाँ घबराकर और चीत्कार करती हुई अज़ीज़ से अलग हो गई। अज़ीज़ ने उसे थाम लिया।

"घबराओ नहीं, यह तो गुलदुम है।" अज़ीज़ ने गुलदुम की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा।

गुलदुम फिर अपने कोमल कंठ से चहकी। वह नूरनशां के सिर से उड़ी नहीं, वहीं बैठी रही। अज़ीज़ ने उसे अपने हाथों में ले लिया। गुलदुम उसके हाथों में आ गई।

नूरनशाँ बोली—"हाय! कितनी छोटी-सी गुलदुम है, कितनी प्यारी! इस मौसम में कहां से आ गई यहां ?"

गुलदुम ने कहा, "चूँ चूँ चिर चिर चिर चूँ चूँ।"

"गाती है," नूरनशाँ ने हँसकर कहा।

"गाती नहीं है, रोती है," अज़ीज़ ने कहा, "बेचारी को भूख लगी है।"

नूरनशाँ ने कहा, "मैं इसे घर ले जाऊँगी। लो इसे पकड़ लो, मैं पानी भर लूँ।"

नूरनशाँ ने पानी भर कर घड़ा सिर पर रख लिया। अजीज ने अपनी मुट्ठी में गुलदुम को लिया और वे दोनों लौट गए। गुलदुम के पाने की उसे इतनी प्रसन्नता थी कि नूर बिना थके सारी चढ़ाई चढ़ गई और कहीं पर सांस लेने के लिये भी नहीं रुकी। अपने घर में पहुँच-कर उसने घड़ा उतार कर धरती पर रखा और फिर तुरन्त मुड़कर अजीज से कहने लगी—"लाओ हमारी गुलदुम।"

"तुम्हारी कैसे हो गई? वाह, गुलदुम तो मेरी है।" अजीज ने कहा।

"नहीं नहीं," नूरनशाँ ने ठिठकते हुए कहा, "गुलदुम हमें दे दो, गुलदुम हमारी है।"

"नहीं हमारी है।"

नूरनशाँ ने कहा, "गुलदुम हमारी है, क्योंकि यह पहले हमारे सिर पर आकर बैठी थी।"

अजीज ने कहा, "इसे रास्ते भर तो उठाकर मैं लाया हूँ। अपनी मुट्ठी में गरम रखा है इसे। नहीं तो रास्ते ही में मर गई होती। मैंने इसकी जान बचाई है, गुलदुम मेरी है।"

"नहीं मेरी है।" गुलदुम पर झपटते हुए नूरनशां बोली।

नूरनशाँ की माँ ने कहा, "ऐसे फैसला नहीं होगा। तुम गुलदुम को आले में रख दो, फिर गुलदुम को बुलाओ। गुलदुम जिसके पास चली जाएगी, उसी की है।"

अजीज ने गुलदुम आले में रख दी।

नूरनशाँ ने कहा, "पहले मैं बुलाऊँगी इसे।"

"बहुत अच्छा! तुम ही बुलाओ।"

नूरनशां ने हाथ फैलाकर अत्यन्त मधुर कण्ठ से कहा, "आजाओ, ची ची ची मेरी नन्ही-मुन्नी गुलदुम ! आजाओ, ची ची ची।"

गुलदुम मौन आले में बैठी रही।

जब नूरनशां सारे यत्न करके परास्त हो गई तो धीरे से बोली— "अब तुम ही बुला लो इस कलमुँही को।"

अज़ीज़ ने सीटी बजाई। गुलदुम फुर्र से उड़ कर उसके कन्धे पर आ बैठी। अज़ीज़ हँसने लगा।

नूरनशाँ के नेत्रों में अश्रु-कण उभर आए। बोली, "ले जाओ इसे, और फिर कभी मुझे अपना मुँह न दिखाना। अभी ले जाओ इसे, लाल-लाल दुमसड़ी को।"

अज़ीज़ ने हसते-हँसते गुलदुम नूरनशाँ के सिर पर रख दी। बोला—"माल मेरा है, पर रहेगा तुम्हारे पास, क्योंकि मेरे घर की मालकिन तुम होने वाली हो।" नूरनशां शर्मा गई। अज़ीज़ हँसते हुए बाहर निकल गया।

अजीज के साथ अब कोई न था। इसलिए अब वह सुगमता से चढ़ाई चढ़ता जा रहा था। चढ़ाई चढ़ना वैसे भी उतराई से आसान होता है। वह निश्चिन्तता से सीटी बजाता, इधर-उधर देखता चला जा रहा था। अगले मोड़ पर गहरी खाई का किनारा था जहाँ पाँव तनिक भी इधर-उधर हो जाए तो मनुष्य आठ हज़ार फुट गहरे खड्ड में गिर जाए। मोड़ पर पहुँच कर अजीज ने अपने पांव सम्भाल लिए। आगे बढ़ा तो रुक गया। उसके ऊपर धुन्ध में लिपटा हुआ एक आदमी खड़ा था !

"कौन है ?" अजीज ने ललकार कर पूछा।

वह आदमी एक पग नीचे उतरा। अजीज ने देखा, यह उसका बड़ा भाई अमीन था।

"क्या बात......" परन्तु अजीज अपना वाक्य पूरा न कर सका।

अमीन ने उछल कर अजीज पर आक्रमण कर दिया और वे दोनों

एक गोला बनाते और फिर उसे बर्फ़ पर चलाना आरम्भ करते। जैसे-जैसे बर्फ़ का गोला चलता जाता वह रास्ते की बर्फ़ पकड़ता जाता और बड़ा होता जाता और उसका चलना कठिन हो जाता। फिर एक समय ऐसा आता कि सब लड़के-वाले मिलकर भी उसे आगे न धकेल सकते। तब वे इस गोले का सिर, मुंह, कान और हाथ-पांव बनाते। उसके सिर पर देवदारु की हरी झालरों वाली पत्तियों का ताज रखते। आँखों के स्थान पर दो बड़े-बड़े काले कंकर रख देते और ओठों में सिग्रेट के तौर पर एक छोटी-सी टहनी का टुकड़ा दबा देते।

बालकों ने एक ऐसा ही नया गोला बनाया। जब वह बन गया तो सब ने ताली बजाई और एक-दूसरे के हाथ में हाथ दिये, उसके चारों ओर नाचने लगे। "आ हा हा, राजा साहब आ गए, राजा साहब आ गए।"

बहुत समय बीता, कोई दो या तीन वर्ष हुए राजा साहब यहाँ शिकार को आए थे। उस समय लड़कों ने उनके मुँह में एक सफेद रंग की नलकी जैसी चीज देखी थी जिससे धूआँ निकलता था। हुक्के से सब लोग परिचित थे, परन्तु सिग्रेट लड़कों ने अपने गांव में प्रथम बार देखा था। वे बड़े अचम्भे से उसे ताकते रह गए थे।

थोड़ी देर नाचने के पश्चात् बच्चे दो टोलियों में विभाजित होने के लिये पुगने लगे। वे तीन-तीन की टोलियों में खड़े होकर एक-दूसरे के हाथ में हाथ देकर हाथों को झुलाते और फिर अपने हाथों को अलग करते हुए अपनी एक हथेली दूसरी हथेली पर रख देते। वायु-मण्डल में एक साथ ताली बजने की सी आवाज़ गूँजती और फिर वह लड़का या लड़की जिसकी सीधी हथेली पर उलटा हाथ रखा होता या सीधी हथेली पर सीधा हाथ रखा होता परन्तु इस प्रकार रखा होता कि दूसरे लड़कों के हाथ उसी प्रकार न रखे होते, वह पुग जाता और राजा साहिब की मूर्ति अर्थात् बर्फ़ के गोले से कोई डेढ़ सौ गज़ परे खड़ा हो जाता और उस पर मारने के लिए बर्फ़ के छोटे-छोटे गोले बनाने लगता।

जब सब बालक दो टोलियों में विभाजित हो गए, एक राजा साहब के रक्षकों की और दूसरी उनके आक्रमणकारियों की, तो बर्फ़ के बहुत से गोले तैयार किए गए। फिर यह चुनने के लिए कि कौन से तीन लड़के मूर्ति के दाएँ, बाएँ और सम्मुख खड़े हों, उक्कड़-दुक्कड़ की गिनती गिनी गई। उक्कड़ शब्द से पहला लड़का गिना जाता। अन्तिम शब्द जिस लड़के पर आता उसे मूर्ति के सामने खड़ा होना पड़ता। इस प्रकार तीन बार किया जाता, क्योंकि तीन लड़कों का निर्वाचन करना होता था। सब लड़के एक पंक्ति में खड़े थे। दो लड़के चुन लिए गए थे। वे मूर्ति के दाएँ-बाएँ जाकर खड़े हो गए और उन्होंने बर्फ़ के गोले अपने हाथों में उठा लिए। तीसरे लड़के के सामने आते ही बर्फ़ के गोलों का मुकाबला होता था। एक लड़के ने लड़कों को एक-एक करके उँगली से छूते हुए कहना आरम्भ किया:—

उक्कड़, दुक्कड़, भम्बा भो
अस्सी, नव्वे, पूरे सौ
सौ कलूटा
तीतर मोटा
चल मदारी
पैसा खोटा।

"खोटा" शब्द उच्चारित होते ही तीसरा लड़का उछलकर मूर्ति के सामने आ गया और दोनों ओर से गोलाबारी आरम्भ हुई। बहुत देर तक गोलाबारी होती रही, परन्तु अन्त में विजय राजा साहब के रक्षकों की हुई। मूर्ति पर केवल तीन गोले लगे थे परन्तु मूर्ति उसी प्रकार खड़ी रही, केवल उसका ताज गिर गया था। अब बालक इस खेल को छोड़कर बर्फ़ का गढ़ बनाने में लग गए और बच्चियाँ बर्फ़ के नन्हें-नन्हें घरौंदे बनाने लगीं और बर्फ़ की मटकियाँ सिर पर रखे चश्मे से पानी लाने लगीं। और बर्फ़ का चूल्हा बना कर उस पर बर्फ़ का तवा रख कर बर्फ़ की रोटियाँ बनाने लगीं।

और जब सूर्य अस्ताचल में चला गया तो शिकारियों ने अपना काम
े से अधिक समाप्त कर लिया। पौधों के किनारे-किनारे बर्फ़ की
 ऊँची दीवार खड़ी हो गई थी। अब वे दूसरे दिन काम करने लिए
दा हुए। रात्रि के समय चौकीदारी के लिये वे अजीज को नियुक्त
र गए। अज़ीज़ रात को खाना खाकर और राइफल हाथ में लेकर
और कारतूस जेब में डालकर पौधों के बीच बनी हुई मचान की ओर
चला गया। वह रात अत्यन्त सुहावनी थी। प्रथम हिम-पात की
रात में यदि चाँदनी खिले तो अति सुन्दर होती है। ढलान की सीढ़ियों
पर बर्फ़ चमक रही थी और कहीं-कहीं उस चमकती हुई बर्फ़ पर घरों
और चट्टानों की लम्बी-लम्बी छाया पड़ रही थी। दूर तक चारों ओर
पर्वतों की निस्सीम श्रेणियों पर एक अद्भुत नीलिमापूर्ण धवलता फैली
हुई थी। हवा में जँगन की हल्की सी सुगन्ध थी और तारे बर्फ़ के गाले
थे जो रात की ओढ़नी में आकाश की झील से छलक कर गिर पड़े थे और
झम-झम चमक रहे थे और अजीज को इतने निकट लगते थे जैसे वह
उन्हें अपने हाथ से छू सकता है। अजीज़ को नूरनशां की ओढ़नी का
ध्यान हो आया। वह मुस्करा पड़ा। उसने अपनी फ़रग़ल को भली
प्रकार अपने चारों ओर लपेट लिया और चट्टान की सीढ़ियाँ चढ़ता
गया और नूरनशां के घर के समीप पहुँच उसके पग सहसा रुक गए।
घर में प्रकाश न था, शायद सब सो गए थे। अजीज़ देर तक वहां खड़ा
रहा और फिर वह एक चट्टान के पीछे छिप गया और दुबक कर भेड़ि
की बोली बोलने लगा। वह इतने पास से बोल रहा था, परन्तु
प्रकार बोल रहा था कि उसकी आवाज़ निकट से नहीं वरन् दूर
जंगल से आती प्रतीत होती थी जैसे किसी हिमाच्छादित भट के कि
कोई एकाकी विरही भेड़िया अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा में खड़ा च
की ओर देख रहा हो। परन्तु नूरनशां के घर का द्वार नहीं खुला
कोई बाहर नहीं आया। अजीज़ थोड़ी देर प्रतीक्षा करके वहाँ
दिया और फिर चश्मे के पास से गुज़रता हुआ नीचे पौधों के जा

पास पहुँच गया और मचान पर चढ़कर बैठ गया। उसने राइफल में कारतूस भरे, मचान में बिछे हुए घास के बिछौने को ठीक किया और कम्बल ओढ़कर बैठ गया। उसे ज्ञात था कि उधर किसी जंगली जानवर का आना असम्भव ही सा है। आरम्भ में जंगली जानवरों ने पौधों को अवश्य ही क्षति पहुँचाई थी परन्तु जब कुछ जानवर बन्दूक की गोलियों का शिकार हुए तो उन्होंने इधर का आना-जाना बहुत कम कर दिया। फिर भी कभी-कभी कोई भूला-भटका जन्तु इधर आ निकलता था। और पौधों की रखवाली तो आवश्यक थी।

जब अजीज़ को नींद आने लगी तो वह हौले-हौले गाने लगा। हौले-हौले गाते-गाते वह ज़ोर से गाने लगा ताकि जंगल के समस्त वृक्ष और पशु-पक्षी और बर्फ़ के समस्त कण और आकाश के समस्त तारे और कबीले के समस्त प्राणी उसके विरह-ग्रस्त प्रेम का गीत सुन लें। और जब वह गाते-गाते थक गया तो बंजली बजाने लगा और देर तक उसे बजाता रहा। फिर अन्त में जब उसे बंजली की स्वर-लहरी नीरस प्रतीत होने लगी तो वह सहसा और उदास हो गया और मुँह से ज़ोर-ज़ोर से साँस निकालने लगा।

साँस मुँह से निकलते ही वायु में धूआँ बन जाता और [illegible] लटक जाता जैसे कोई जादूगर सफेद रूमाल को हवा में [illegible] दे। फिर यह धूआँ बहुत ही धीरे-धीरे हवा में घुल [illegible] देर तक इसी तरह करता रहा। सहसा उसने मचान के [illegible] का अनुभव किया। उसने झुककर देखा, नूरजहाँ थी। [illegible] मचान से छलांग लगा दी और उसे अपनी [illegible] -लिया और उसके बालों, उसके कन्धों, [illegible] उसके अधरों को चूमने लगा। नूरजहाँ [illegible] मुँदने लगीं और उसका शरीर बर्फ़ के [illegible] उसने साँस रोककर बड़ी कठिनता से [illegible] किया और उसकी ओर देखकर बड़े [illegible]

कहने लगी—

"हाय तुम कितने बुरे हो। मैं तो तुमसे बातें करने आई थी और तुम........" वह रूठकर उससे अलग खड़ी हो गई और अज़ीज़ ने फिर दोनों हाथ उसकी कमर में डाल दिये और उसे बहुत हौले से अपनी ओर खींच लिया और बहुत लज्जित होकर अपनी भूल स्वीकार की। और नूरनशां हँस पड़ी और उसने अपनी आंखें उसकी आंखों में डालकर अपनी छोटी उँगली के नाखून से अज़ीज़ की ठोड़ी को छू लिया और फिर आँखें झुकाकर कन्धे से लग गई और वे दोनों देर तक उसी प्रकार खड़े-खड़े बातें करते रहे। सामने ढलवान पर एक सुन्दर सींगों वाला हरिण आ खड़ा हुआ और उन्होंने उसे नहीं [illegible]खा और हरिण अपने सींग इधर-उधर हिलाता हुआ वायु को सूंघता रहा। और फिर वह चीड़ के एक वृक्ष से लगकर अपनी खाल सहलाने लगा। फिर ब्याड़ के वृक्षों के तनों में से गुजरती हुई एक सुन्दर हरिणी आई और काली छायाओं और चांदनी की झीलों और बर्फ़ के गद्दर गलीचों पर से गुज़रती हुई, झिझकती हुई, लजाती हुई, देवदारु के एक छोटे से पौधे के पास खड़ी हो गई और.........इन दोनों ने उसे भी नहीं देखा और फिर बारहसींगे ने वायु को सूँघा और वह गर्वपूर्ण, अद्भुत ठाठ से टहलता-टहलता हरिणी के पास चला गया और अपनी गर्दन उसकी मखमल ऐसी गर्दन से सहलाने लगा। और फिर वे दोनों हरिण बिना किसी आहट के चौंक पड़े और चौकड़ियाँ भरते हुए नीचे जङ्गल में चले गए। उस समय अज़ीज़ और नूरनशां ने उन्हें देखा और नूरनशां ने मीठी आह भर कर कहा, "हरिणों का जोड़ा था।" और अज़ीज़ ने प्यार से उसकी नाक सहला दी। फिर उसने ज़ोर से साँस भर कर उसे बाहर निकाला और एक श्वेत धुन्ध हवा में तैर उठी। इस पर नूरनशां ने ज़ोर लगाकर अपना साँस बाहर निकाला जो अज़ीज़ के सांस से कुछ आगे निकल कर हवा में जम गया। इस प्रकार थोड़े समय तक वे हवा में सांसों के रूमाल उड़ाते रहे और एक-दूसरे से होड़

लगाते रहे। सहसा कहीं से एक गोली ठाएँ से चली और उनके समीप बर्फ़ की मूर्ति को भेदती हुई निकल गई। अज़ीज़ तुरन्त पृथ्वी पर गिर गया और उसने झटके से नूरनशाँ को भी नीचे गिरा लिया और वे दोनों बर्फ़ की मूर्ति के पीछे दुबक गए.........।

दूसरी गोली चली और बर्फ़ की मूर्ति का सिर उड़ गया। अज़ीज़ ने नूरनशाँ से कहा—"तुम दुबक कर ढलवान की ओर जाओ। मैं मचान पर चढ़ने का प्रयत्न करता हूँ, मेरी राइफल ऊपर है।" वह भूमि पर घिसट-घिसट कर मचान के निकट पहुँच गया जो वृक्षों की ओट में थी और मचान पर चढ़कर अपनी राइफल लेकर नीचे उतरा। कई क्षण बीत गए परन्तु फिर कोई गोली नहीं चली। अज़ीज़ ने गोली आने की दिशा का अनुमान लगाकर चट्टानों की ओर गोली चलाई। परन्तु कोई उत्तर नहीं आया। अज़ीज़ ने चिल्लाकर कहा—"गोली चलाने वाले। तुझ में साहस है तो सामने आजा। देख मैं यहाँ खड़ा हूँ। आ, सामने होकर मुकाबला कर लें।" और अज़ीज़ यह कहते ही बर्फ़ पर सीधा खड़ा हो गया। अज़ीज़ ने चट्टनों की ओट से एक परछाईं को भागते देखा।। परन्तु उसके सामने कोई नहीं आया, क्योंकि सम्मुख खड़े होकर अज़ीज़ का सामना करना अपनी मौत को निमन्त्रण देना था।

गुलदुम को आए हुए दस दिन ही बीते थे कि अज़ीज़ और नूरनशाँ का विवाह हो गया और गाँव वालों ने नूरनशाँ के घर के नीचे, जिधर से चश्मे क़ो रास्ता जाता था, एक घर बनाया—उन दोनों के निवास करने के लिये। गीली मिट्टी को दो बड़े तख्तों पर थोप कर दीवार बनाई गई और नीचे रुख से सन्थे की झाड़ियां काट-काट कर चीड़ की वल्लियों पर छत बनाई गई और उसके ऊपर लाल चट्टानों की बजरी बिछाई गई और घर को अन्दर से खड़िया मिट्टी से पोत दिया गया। और फिर अज़ीज़ की माँ ने चूल्हा बनाया और अपने हाथ से नये घर में पीली मकई की सुनहरी रोटियाँ, मक्खन में गूंध कर [illegible]

खिलाई। नूरनशाँ की माँ ने आले में दिया जलाकर रखा और नये घर के द्वार पर जंगली अगर के सुगन्धित पत्तों के हार लटकाए और घर-वधु की बलाएँ लेती हुई वहाँ से विदा हुई। अब घर में अजीज और नूरनशाँ अकेले थे। आले में दिया जल रहा था। दूसरे आले में गुलदुम बैठी थी। घर का द्वार खुला था परन्तु उन्हें पता था कि आज की रात वे उसे बन्द न कर सकेंगे क्योंकि आस-पास की चट्टानों पर और चट्टानों के पीछे चंचल, नटखट लड़कों और लड़कियों की टोलियाँ बैठी हुई हैं। अगर उन्होंने द्वार बन्द किया तो वे चिल्लाकर आकाश सिर पर उठा लेंगे और शायद द्वार ही तोड़ डालें।

नूरनशाँ गुलदुम को अपने हाथ में लिये द्वार पर आगई और अपनी हथेली पर मकई का चूरमा रख कर उसे खिलाने लगी। फिर धीरे से अजीज भी वहीं आगया और द्वार के दूसरे पट से लग कर खड़ा हो गया। उनके पीछे प्रकाशमान दीपक था और सामने खुला आकाश। द्वार पर जंगली अगर की सुगन्ध थी। नूरनशाँ के नेत्रों में एक नूतन ज्योति विद्यमान थी और जब वह गर्दन न्योढ़ा कर अजीज की ओर निहारती थी तो उसकी चोटी में गुंथी हुई कांच की लड़ियां झन-झन करके बजने लगती थीं। सहसा नूरनशाँ अजीज की ओर देखकर हँस दी और उसने अपने ओठ गुलदुम की चोंच से मिला दिये। सहसा कोई चट्टानों के पीछे से "चांद और सिपाही" का गीत गाने लगा। लड़के सिपाही के प्रश्न सुनाने लगे और लड़कियां चांद का उत्तर बताने लगीं और उनके मीठे बोलों व टप्पों में सारी रात बीत गई और अजीज और नूरनशां को यह भी पता न चला कि वह कब तक गीत सुनते रहे, और जागते रहे और कब सोए। हां, उन्हें इतना ज्ञात था कि प्रातःकाल जब वे जागे तो सूर्य की किरणें उनके चेहरे पर पड़ रही थीं और गुलदुम नूरनशां के सिर पर अपने पंख फैलाए उसे हलकी-हलकी चोंचें मार रही थी और गा-गाकर जगा रही थी।

आज उन्हें 'समाधि' पर जाना था। इसलिए नूरनशाँ और अजीज

वहुत शीघ्रता में तैयार हो गए। नूरनशाँ ने वर्तन मांझकर अलग रख दिये और चूल्हे में आग सुलगा कर लकड़ियाँ वाहर निकाल लीं और अंगारों को राख में दवा दिया। गुलदुम को दाना खिला कर उसे अच्छी तरह प्यार किया और घर का द्वार वन्द करके अपने पति के साथ प्रथम बार 'समाधि' को चली। समाधि रूख के पास एक पुराने चिनार की छाया में पत्थरों के एक चबूतरे पर स्थित थी। यह किस वली-अल्ला की समाधि थी इसका किसी को पता न था। यहाँ कोई मौलवी भी न रहता था। टूटी-फूटी समाधि के झाड़ों पर और चिनार के तने के नीचे उगने वाली छोटी-छोटी झाड़ियों से कपड़े की छोटी पोटलियां ग़रीव, अनजान देहातियों की सैंकड़ों इच्छाओं और आकांक्षाओं को अपने वक्ष में लिये, लटक रही थीं। यह पोटली अफ़ज़ल की थी जिसका विवाह वेगमाँ से न हो सका। यह पोटली गुलामअली की थी जिसके आज तक कोई लड़का न हुआ था। यह पोटली जेराँ की थी जिसके पति को शेर ने घायल कर दिया था। जेराँ का पति स्वस्थ न हुआ था परन्तु पोटली अभी तक लटक रही थी और यह पोटली खुल कर जमीन पर गिर पड़ी थी और इस प्रकार धूल में मिल गई थी कि कोई कह न सकता था कि यह किस की पोटली है।

इन पोटलियों में कैसी-कैसी आकांक्षाएँ थीं, कैसे-कैसे अरमान, खुशियाँ, जिनकी सुगन्ध आकाश तक फैली हुई थी; आँसू जो मोतियों जैसी चमक रखते थे—अरमान जो अधूरे रह गए; उमंगें जिन्हें मृत्यु अपने साथ ले गई; आशाएँ जो वर्फ़ के गोलों की भांति पृथ्वी में समा गईं। इन्सान मर जाते हैं परन्तु उनकी खुशबूएं यादों की छोटी-छोटी पोटलियों में रह जाती हैं। फिर एक दिन यह पोटलियाँ भी खुल जाती हैं और इनकी सुगन्ध हवा में, आकाश में, और धरती के गर्भ में समा जाती है। और जव नये मानव का जन्म होता है तो वह अपने साथ नई सुगन्ध, एक नई खुशी, एक नई उत्कंठा लाता है—पहिले से अधिक सुन्दर, सूक्ष्म, कोमल। और जीवन इन नव-पल्लवों से

कर बोल उठता है—देख लो, देख लो वसन्त अनन्त है, वसन्त अनन्त है।

अज़ीज़ और नूर समाधि से खुशी खुशी लौटे। रास्ते में अपने भविष्य की चर्चा करते हुए, गीत गाते हुए, चढ़ाई चढ़ते हुए चले आ रहे थे कि एक ऊँचे पर्वत के वृक्ष पर अज़ीज को एक रतगल्ला नज़र आया। अज़ीज ने राइफल सीधी की परन्तु नूर ने हाथ पकड़ लिया। बोली—"आज नहीं...बस आज की आज नहीं—देखो कितना सुन्दर पक्षी है कैसी मीठी बोली बोलता है।"

वे रतगल्ले का चहचाना सुनते रहे। फिर आगे बढ़े तो मधु-मक्खियों की गुञ्जार सुनाई दी। देखा एक ऊँचे चीढ़ के वृक्ष पर अंगूरों की बेल लिपटी हुई थी। परन्तु सूखी थी, उस पर पत्ते न थे। यह बेल ऊपर चीढ़ के नुकीले झूमरों तक फैलती चली गई थी। यहाँ पर मधु-मक्खियों ने एक बहुत बड़ा छत्ता बना रखा था। अंगूर की बेल के ऊपर।

"हूँ," अज़ीज गुर्राया।

"क्या बात है?"

"यह देखो मधु-मक्खियाँ कितनी स्यानी होती हैं।"

"कैसे?"—नूरनशाँ ने पूछा।

"तुम्हें मालूम है इन मक्खियों ने चीढ़ के वृक्ष पर छत्ता क्यों नहीं बनाया, बेल पर क्यों बनाया है?"

"नहीं तो।"

"रीछ से बचने के लिये। रीछ चीढ़ के पेड़ पर चढ़ सकता है पर वहां तक नहीं पहुँच सकता जहाँ बेल पर छत्ता है। रीछ का बोझ बेल नहीं सहार सकती। बल्कि वहाँ पर तो यह इतनी कोमल है केवल इस छत्ते का बोझ ही सहार सकती है।"

"तुम्हारा भी नहीं?" नूरनशाँ ने पूछा।

अज़ीज उसकी ओर देखकर रुक गया, बोला, "शहद तो

मीठा है। परन्तु इन मक्खियों के डंक बड़े कड़वे होते हैं। मैं इस अंगर की वेल पर भी चढ़ सकता हूँ परन्तु अभी मेरे पास कोई कम्वल नहीं है। कम्वल होता तो अभी तुम्हें छत्ते तक पहुँच कर दिखाता। कम्वल अपने चेहरे और सिर पर लपेट लेता और शहद का छत्ता तोड़ लेता। कल आऊँगा।" इतना कहकर अजीज इधर-उधर देखने लगा ताकि मार्ग याद रख सके। नूरनशाँ ने हँसकर कहा, "नहीं, मुझे ऐसा शहद नहीं चाहिये। मैं तो यूँ ही कह रही थी। अब शीघ्रता से घर चलो, भूख लग रही है।" अजीज ने कहा, "और मुझे तो और भी अधिक भूख इसलिये लग रही है कि आज तुम्हारे हाथ की पकी हुई रोटियाँ मिलेंगी।"

"उँह ! इससे पहले कई वार हमारे घर में खा चुके हो।"

"परन्तु अपने घर में तो पहली वार है।"

जब अजीज और नूर अपने घर पहुँचे तो उन्हें द्वार खुला हुआ मिला। छत से धूआँ निकल रहा था। किसी ने आग लगाने का प्रयत्न किया था परन्तु सन्थे की झाड़ियाँ गीली थीं। इस कारण घर को ठीक प्रकार आग न लग सकी थी। हांडियाँ टूटी पड़ी थीं। अन्य वर्तन भी टूटे पड़े थे। नूरनशाँ के वस्त्र भी किसी ने फाड़ डाले थ। वे तार-तार हुए नीचे पड़े थे। दीया धरती पर औंधा पड़ा था और तेल उसके चारों ओर फैल चुका था।

सहसा नूर की चीत्कार निकल पड़ी, "हाय, मेरी गुलदुम !"

गुलदुम को किसी ने नोच नोच कर फेंक दिया था। एक पंख यहाँ पड़ा था, एक वहाँ, धड़ कहीं और सर कहीं। नन्ही सी जान का नन्हा-सा तो तन था।

नूरनशाँ ने रोते-रोते उसके पंख एकत्रित किये, उसका सिर, धड़, फिर उसकी नन्ही सी चोंच को अपने कपोलों से लगाकर सिसकियाँ लेने लगी।

अजीज़ ने अपने लुटे हुए घर पर दृष्टि डाली, नूरनशाँ ने

हाथों में गुलदुम का शव देखा, फिर उसने धीरे से दीवार से लगी राइफिल को उठा लिया और घर से बाहर निकल गया। नूरनशाँ [illegible]ती ही रह गई "तुम कहां जा रहे हो ?" परन्तु अज़ीज़ ने कोई [illegible]त्तर नहीं दिया।

बहुत समय तक चारों ओर सन्नाटा छाया रहा और इस पूर्ण निस्तब्धता में नूर को लगा जैसे उसके हृदय की धड़कन भी बन्द होती जा रही है।

फिर कहीं दूर एक गोली चली और नूरनशां का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। फिर एक और गोली चली और नूरनशां का दिल और भी जोर-जोर से धड़कने लगा और गुलदुम उसके हाथ से नीचे गिर पड़ी और उसने अपने दोनों हाथ अपनी छाती पर रख लिये।

फिर जैसे कई सौ वर्षों के लम्बे अर्से के बाद घर का द्वार खुला और बूढ़ा शिकारी अब्दुल्ला हौले-हौले पांव रखता हुआ अन्दर आया और नूरनशां की ओर देखता हुआ बोला, "तेरे लिये मेरे दोनों बेटे मारे गए।"

नूरनशां वहीं अपनी छाती पर हाथ रखे खड़ी रही।

अब्दुल्ला धीरे से धरती पर झुक गया घुटने टेककर दोनों हाथ[illegible] से गुलदम के टुकड़े चुन लिये और रुंधे हुए कण्ठ से बोला—"आ[illegible] इसे अभी दफ़न कर दें, क्योंकि फिर मुझे उनकी लाश ढूंढ़ने के [illegible] खड्ड में जाना है।"

वह गुलदुम को दोनों हाथों में उठाए हुए धीरे-धीरे द्वार से [illegible] चला गया।

: १३ :

दातुन वाले

नौशेरवाँ जी पारसी का घर समुद्र के तट पर था। इसलिये उसने यह घर अत्यन्त सावधानी से बनवाया था कि कहीं यह समुद्र के तूफ़ानों की भेंट न चढ़ जाए। ठोस नींव पर उसने एक मँज़िल ऊँचा पत्थरों का चबूतरा बनवाया था और फिर इस चबूतरे के ऊपर उसने मकान बनवाया था। मकान तीन मंज़िल का था और प्रत्येक मंज़िल की दीवारें साधारण मकानों की दीवारों से दुगनी ऊंची होंगी। मकान के भीतर पन्द्रह कमरे थे और छः स्नानागार। मकान में वह अकेला रहता था। एक नौकर और एक नौकरानी उसकी सेवा करने के लिये लगे हुए थे। नौशेरवाँ पारसी की आयु पचास से ऊपर होगी। उसने विवाह नहीं किया था। उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। उसके पास बहुत धन था। समुद्र के किनारे पर अन्य धनवानों के पांच छः घर और भी थे, परन्तु नौशेरवाँ जी का घर सब से ऊंचा था और दूर से किसी समुद्री लुटेरे का गढ़ सा प्रतीत होता था। सब लोग नौशेरवाँ जी का सम्मान करते थे क्योंकि वह बहुत नेक बूढ़ा था। अन्य धनवान लोगों की भांति कभी किसी का दिल नहीं दुखाता था। वह पड़ोसियों का सम्मान करता और कभी किसी से न झगड़ता। बहुत समय बीता उसने अपना ताड़ीख़ाना, जिससे उसने लाखों रुपये कमाए थे, बन्द कर दिया था और समुद्र के तट पर अपनी ऊंची अट्टा[illegible] में शान्त, एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा था।

नौशेरवाँ जी का नियम था कि वह बहुत सवेरे उठकर बाहर सैर
निकल जाता और सूर्य उदय होते ही लौटकर मकान में आ
ा। फिर शौच इत्यादि से निवृत्त होकर नाश्ता कर समाचार पत्र का
यन करता। नई-नई पत्रिकाओं को देखता। उसे अमरीका की
त्रकाएं बहुत पसन्द थीं। इतने सुन्दर चित्र होते उनमें कि मनुष्य
ता ही रह जाए। नाश्ते के पश्चात् वह "ईवनिङ्ग पोस्ट" का कोई
ारावाहिक उपन्यास ले बैठता और अपने छोटे से सुन्दर बगीचे में
ाराम कुर्सी पर बैठे-बैठे या जामुन के पेड़ के झूले में लेटे-लेटे उसे
समाप्त कर डालता। इतने में खाने की घन्टी बजती और वह खाना
खाने के पश्चात् अपने शयनागार में चला जाता। वहाँ नौकरानी
उसके पांव दबाने लगती और वह मद्धम-मद्धम हल्के-हल्के ज्वारभाटे में
तैरता हुआ निद्रा-देवी के लोक में पहुँच जाता। पाँच बजे के लगभग
जब उसकी आंख खुलती तो शुद्ध चीनी चाय के दो नमकीन प्याले पी
कर वह बाहर सैर को चला जाता। रास्ते में पड़ोसियों से, उनकी बहू-
बेटियों से, उनके लड़के वालों से स्नेहपूर्ण 'साइव जी' करता और
मुस्कराता हुआ, छड़ी घुमाता हुआ तट के किनारे किनारे सैर करता और

संध्या की लालिमा रात्रि का काला लबादा ओढ़कर सो जाती और
पवन की शीतलता बढ़ जाती और मछुवे अपने तिकोने पालों का रुख़
घर की ओर मोड़ देते तो नौशेरवाँ जी पारसी भी हौले-हौले पग धरता
अपने घर को लौट आता और फिर कोई नशे वाली शराब पीकर और
खाना खाकर सो जाता और मकान की बत्तियां बुझ जातीं और समुद्र
का शोर रात की निस्तब्धता का मुख्य अंग बनकर सारे घर को अपनी
गोद में ले लेता। कितना पवित्र, स्वच्छ, निथरा-निथरा था नौशेरवाँ
जी पारसी का जीवन—किसी हल्के नशे वाली गुलाबी मदिरा की
भांति शान्तिदायक।

नौशेरवाँ जी पारसी ने अपने घर से समुद्र के तट तक कोई ती
फर्लांग के फासले तक पक्की सड़क बनवा रखी थी। यहां भूमि नीच

थी परन्तु नौशेरवाँ जी अपने घर की भांति सड़क के लिये भी ऊँचे चबूतरे वाली टैकनीक को प्रयोग में लाया था। उसने सड़क ऊँची बनवाई थी और उसके आस-पास की भूमि नीची थी। दिन के बारह बजे जब समुद्र की उछलती हुई लहरें आतीं तो नीची भूमि में चारों ओर पानी फैल जाता, परन्तु सड़क बिल्कुल सुरक्षित रहती। छोटी-छोटी लहरें उसकी सतह के किनारों को छूने का प्रयत्न करतीं परन्तु सदा असफल रहतीं। यह सड़क बहुत दूर तक चली जाती और फिर समुद्र के तट पर आकर सहसा समाप्त हो जाती। यहां नारियल का झुण्ड था जहां प्रत्येक इतवार को सुन्दर स्त्रियों के साथ कुरूप पुरुष, और युवतियों के साथ वृद्ध पुरुष और अधेड़ आयु की स्त्रियों के साथ सुन्दर लड़के ऐश करने के लिये आते थे। यहां पर सड़क समाप्त हो जाती थी क्योंकि जीवन का ध्येय भोग-विलास के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसके आगे समुद्र ही समुद्र है जहां सब कुछ डूब जाता है।

एक दिन नौशेरवाँ जी पारसी जब सवेरे सैर को निकला तो चारों ओर बड़ी घनी धुन्ध छाई हुई थी। सड़क के किनारे-किनारे झाड़ियों से धुन्ध ऐसे लिपटी हुई थी जैसे समुद्र की लहरों से झाग। समुद्र के किनारे ताड़ के वृक्ष उन हबशियों की भांति तने खड़े थे जो अपने तेज़ नुकीले भाले लिये शत्रु की घात में हों। धुन्ध के उस श्वेत वन में नौशेरवाँ जी पारसी बड़े आनन्द से धीरे-धीरे चलता हुआ रास्ता तै कर गया। यहां पर सड़क मुड़कर तट की ओर सीधी चली जाती थी। इस मोड़ पर कीकर और जामुन के बहुत से वृक्ष थे और यहां पर एक बैंच पड़ा था जहां पर नौशेरवाँ जी पारसी प्रति दिन कुछ मिनट बैठकर विश्राम कर लेता और फिर आगे जाने का संकल्प करता। नौशेरवाँ जी पारसी धीरे से अपनी बैंच पर बैठ गया परन्तु उसे यह देखकर बड़ा अचम्भा हुआ कि आज बैंच के दूसरे सिरे पर कोई और भी बैठा है और बड़ी कुशलता से कीकर की टहनियों को पत्तों और कांटों से साफ़ कर रहा है। टहनियों की सफ़ाई की इस क्रिया में एक झुरझुरी

का सा स्वर पैदा हो रहा था जो कानों को बड़ा भला लग रहा था और जिसमें चूड़ियों की खनक का मद्धम-मद्धम संगीत भी सम्मिलित था। नौशेरवाँ जी पारसी की ओर उस युवती ने यूं ही एक उचटती सी दृष्टि से देखा और फिर वह उसे भूलकर अपने काम में लग गई। सहसा वह मुस्करा कर बोली—"चन्दा ?"

निकट के एक वृक्ष से आवाज़ आई—"हो।"

युवती ने कहा—"चन्दा, यह जगह तो बहुत अच्छी है। कीकर की टहनियों से जान पड़ता है यह जगह किसी दातुन वाले को नहीं मालूम।"

निकट के वृक्ष से फिर पुरुष की वही भारी आवाज़ आई—"हो।"

और उसके पश्चात् बहुत देर तक वृक्ष के ऊपर टहनियों के कटने की आवाज़ आती रही और बेंच पर चूड़ियों की खनक में पत्तों और कांटों के साफ़ किए जाने की झुरझुरी आवाज़ सुनाई देती रही। और सफेद धुन्ध उसी प्रकार चारों ओर लिपटी रही और नौशेरवाँ जी पारसी चुपचाप अपने वृक्ष पर दातुन वालों को हाथ साफ़ करते हुए देखता रहा और कुछ न बोला।

फिर वृक्ष के ऊपर से कोई पुकारा—"कामिनियाँ।"

बेंच पर बैठी हुई स्त्री ने उत्तर दिया—"हो।"

"चार गट्ठों की टहनियाँ तो काट ली हैं। बहुत होंगी कि और काटूं ?"

"नहीं चन्दा एक गट्ठा और काट लो। मैं पांचों के पांचों बेच डालूंगी। ऐसे लहक-लहक के गाऊँगी कि बाबू लोगों को दातुन ख़रीदनी ही पड़ेगी।

वह हँसी और नौशेरवाँ जी को प्रतीत हुआ मानो धुन्ध छट गई हो और समुद्र के पानी से कोई शीतल अल्हड़ झोंका आकर उसके कपोलों को स्पर्श कर गया हो। नौशरवाँ जी पारसी को उस स्त्री के श्यामल श्यामल गदराए हुए हाथ, डालियाँ संवारते हुए बड़े अच्छे लगे।

उसकी तीखी नाक की फील भी अच्छी लगी। उसके काले-काले नयनों की चमक भी भली लगी और धुन्ध में उलझे-उलझे केश—

कामिनियाँ बोली—"चन्दा।"

चन्दा ऊपर से बोला—"हो।"

"आज सिनेमा जाएंगे।"

"नहीं, तेरे लिए चुन्दरी लेंगे।"

"नहीं, आज सिनेमा जाएंगे। देख तो सही कब से सिनेमा नहीं देखा। दो साल हो गए। व्याह के दिन देखा था—याद है ?"

कामिनियाँ के अधर कपकपाने लगे।

नौशेरवाँ जी पारसी को कामिनियाँ के धुन्ध में भीगे-भीगे ताजा-ताजा ओठ बड़े भले प्रतीत हुए। उसका जी चाहा कि वह इस लड़की को और इसके पति को अभी जेब से निकाल कर सिनेमा के लिए पैसे देवे या स्वयं उन्हें अपनी मोटर में बिठा कर सिनेमा ले जाए। परन्तु वह नौशेरवाँ जी पारसी था और वह दातुन वाले थे और ऐसा नहीं हो सकता था।

नौशेरवाँ जी पारसी ने काफ़ी विश्राम कर लिया था। अब वह धीरे से उठा और छड़ी को कड़ी भूमि पर बजाता हुआ आगे निकल गया।

चन्दा ने घनी टहनियों में से पुकारा—"यह कौन था ?"

कामिनी ने कहा—"जाने कौन था, कोई बुड्ढा था और मुझे बुरी तरह घूर रहा था।" वह खिलखिला कर हँसने लगी। ऊपर टहनियों में से भी किसी के हँसने का स्वर सुनाई दिया और वे वाक्य और वह हँसी नौशेरवाँ जी पारसी ने सुन ली, परन्तु वह मुस्कराता हुआ आगे चला गया।

दूसरे दिन वे फिर उसे वहीं मिले। वे दोनों आमने-सामने बैठे थे और टहनियाँ छीलते जाते थे। लड़की की साड़ी फटी हुई थी और घुटनों से ऊपर थी। वह उसकी टाँगों की सुडौल गोलाई और उनकी

उज्ज्वल रङ्गत देख सकता था। लड़के के सिर पर एक अद्भुत सी टोपी थी जैसी प्रायः बनजारे पहना करते हैं—काले रङ्ग की एक तिकोनी सी टोपी जिसके ऊपर एक बड़ा सा फुंदना था और टोपी के चारों ओर छोटे-छोटे सफेद सितारे से लगे हुए थे। दाएँ कन्धे पर कमीज फट रही थी और उसकी भुजाओं की उभरी हुई मछलियां दिखाई दे रही थीं। उसके कानों में बालियां थीं और उसकी आँखें भय-रहित थीं और वह बार-बार कामनियां की ओर देखकर मुस्कराता था।

नौशेरवां जी ने पूछा—"तुम कहाँ के हो ?"

चन्दा ने कहा—"हम कहीं के नहीं हैं और हम सब जगह के हैं। हम लोग बनजारे हैं। हम शहर से बाहर रहते हैं और शहर में दातुन बेचते हैं।"

नौशेरवां जी ने पूछा—"तुम कहां रहते हो ?"

चन्दा ने उत्तर दिया—"इस जङ्गल के छोर पर हमारी झोंपड़ियां । वहाँ हम सब लोग रहते हैं। फिर जब इस जङ्गल से कोमल ड़नियां नहीं मिलेंगी तो हम इस जङ्गल को छोड़ देंगे और चले एंगे।"

नौशेरवां जी ने कहा—"तुम्हें ज्ञात है यह पेड़ मेरे हैं जिनसे तु तुनें तोड़ रहे हो ?"

चन्दा मौन रहा। कामनियां ने जल्दी में दो बार पलकें झपक रन्तु वह मौन रही।

नौशेरवां जी पारसी ने कहा—"परन्तु इसमें दोष की कोई हीं है। मुझे तुम्हारा यहां आकर दातुन तोड़ना बुरा नहीं लग म्हें मेरी ओर से आज्ञा है। तुम प्रत्येक दिन यहां आकर दातु लए टहनियां तोड़ लिया करो।"

चन्दा ने प्रसन्न होकर कहा—"सेठ, दातुनें तोड़ने से लोग न यों रुष्ट होते हैं और हमें जेल भिजवाने की धमकी देते हैं। ;

दातुनों के लिए टहनियां तोड़ कर वृक्षों को छिदरा करते हैं और उन्हें मजबूत बनाते हैं।"

"वह कैसे ?" नौशेरवां जी ने पूछा।

चन्दा ने उत्तर दिया—"वृक्षों पर टहनियाँ बहुत होती हैं। और बड़ी घनी-घनी होती हैं। इससे वृक्ष दुर्बल हो जाता है जैसे वह स्त्री जिसके बहुत से बच्चे हों।"

कामिनियाँ मुस्कराई, चन्दा के हाथ मार कर बोली—"चल हट।"

"हां मैं सच कहता हूँ, अधिक और सघन टहनियों से वृक्ष दुर्बल हो जाता है। हम लोग दातुनें काट-काट कर टहनियों को छिदरा कर देते हैं। जिससे टहनियाँ और वृक्ष दोनों ही मजबूत हो जाएँ। कभी आपने देखा है कि आपके बाग का माली भी इसी प्रकार वृक्षों को छिदरा करता है ?"

"हां करता तो है" नौशेरवां जी ने उत्तर दिया।

"बस हम भी यही करते हैं। अन्तर केवल इतना है कि वह आपके बाग का माली है और हम जङ्गल के माली हैं। हम लोग टहनियों को इस प्रकार काटते हैं कि दोबारा जो टहनियां निकलें, वे पहले से लम्बी और मोटी हों।"

कामिनियाँ बोली—"जिससे कि तुम और दातुनें काट सको। चल हट, क्या सेठ को बनाता है।"

कामिनियाँ हँसी, चन्दा हँसा, नौशेरवां जी हँसा और वे तीनों मित्र हो गए।

अब नौशेरवाँ जी का नियम हो गया कि वह हर रोज सैर के समय मोड़ पर रुक कर चन्दा और कामिनियाँ से दो-चार मिनट बातें करता। उनके सुख और दुःख में कुछ क्षणों के लिए सम्मिलित हो जाता और उन वनजारों के सुख-दुख को कुछ क्षणों के लिए बांट लेता। कुछ घड़ियों के लिए उनकी प्रसन्नता में सम्मिलित होकर स्वयं को एक नई दुनिया में पाता—यह दुनिया जिससे वह बाल-अवस्था से

...या तक पृथक् रहा था। यह दुनियाँ जिसे उसने दूर से ...
। लोग निर्धन होकर भी इतने सुन्दर, सज्जन और स्नेही हो
। ये निर्धनता और निराशा के अंधियारे में भी जीवन की
कहीं से ढूंढ़ कर ले आते हैं और इसी के सहारे जीते हैं,
ते हैं, प्रेम करते हैं, नेक बनने का प्रयत्न करते हैं और मर जाते
ौशेरवाँ जी ने पूछा—"चन्दा, तुम्हें कहीं किसी स्थान पर जम कर
। क्यों बुरा लगता है ?"

चन्दा ने कहा—"इसलिए कि मेरा काम यही है—एक वृक्ष की
नियों से दूसरे वृक्ष की टहनियों पर फुदकना। मैं कहीं जम कर बैठूं
। खाऊँ कहाँ से ?"

नौशेरवाँ जी ने कहा—"प्रत्येक प्राणी कहीं एक स्थान पर रहता
है, वहाँ घर बनाता है, उस स्थान से प्यार करता है, उसे अपना देश
समझता है।"

चन्दा ने कहा—"यह औरत मेरा देश है। मैं इसे प्यार करता
हूँ। जहाँ हम दोनों जाते हैं, वहां हमारा घर है, क्यों कामिनियाँ ?"

"कामिनियां के अधर कपकपाए और लज्जा से लाल हो
गई और उसका मुख लाज के अरुणिम जल से भीग गया और उसे
प्रतीत हुआ मानो सहस्रों पुरुषों के सम्मुख चन्दा ने उसका चुम्बन
ले लिया हो।

चन्दा ने गर्व से कामिनियां की ओर देखा और फिर गर्वपूर्ण
स्वर में बोला—"सेठ, यह समस्त भूमि और इसके सारे बूटे हमारे हैं।
हम दातुन वाले हैं।"

एक दिन प्रातःकाल के समय वे नहीं आए। नौशेरवाँ जी दिन भर
विचलित रहा। उसे नाश्ता नहीं भाया और उसने अपने स्वभाव ...
विपरीत नौकर को डांट दिया। उस दिन बग़ीचे में आराम-कुर्सी ...
बैठे-बैठे उसका मन अध्ययन करने में भी न लगा। झूले में बैठा तो ...
भी चित्त शान्त न हुआ। लंच के पश्चात् भी वह सो न सका ...

अपने रेशमी विस्तर पर पड़े-पड़े करवट वदलता रहा। अन्त में विचलित होकर उठ खड़ा हुआ और वस्त्र वदल कर वाहर जान लगा। उसके नौकर ने वड़े विस्मय से पूछा—"इस समय आप धूप में कहां जा रहे हैं?"

नौशेरवाँ जी ने वहुत कटुता से उत्तर दिया—"मैं तनिक वाहर मोड़ तक जा रहा हूँ।"

वाहर सड़क पर कोई न था। सड़क के दोनों ओर समुद्र का पानी था। सामने जहां तक दृष्टि जाती, पहाड़ियाँ, सूर्य की प्रचण्ड अग्नि में तप कर चमक रही थीं। मोड़ पर झुण्ड के समीप पहुँचा तो चन्दा और कामिनियाँ की परिचित सूरतें दिखाई दीं। उसने तनिक तीखे स्वर में पूछा—"आज सवेरे क्यों नहीं आए?"

कामिनियाँ मौन रही।

चन्दा ने कहा—"इसका वाप वीमार है।"

"क्या हुआ है उसे?"

"ज्वर आ रहा है। जड़ी-बूटी से कोई लाभ नहीं हो रहा।"

"तो उसे किसी डाक्टर के पास ले जाओ।"

चन्दा मौन हो गया।

कामिनियाँ की पलकें डगमगाकर कपोलों पर गिर पड़ीं।

नौशेरवाँ जी ने कहा—"यह लो, तुम दस [illegible] चिकित्सा कराओ।"

कामिनियाँ ने कहा—"नहीं, नहीं हमें [illegible]

चन्दा ने रुपये ले लिये। कामिनियाँ [illegible] लौटा देंग, थोड़े-थोड़े करके। तुम्हारे [illegible]

नौशेरवाँ जी ने कहा—"[illegible] अब तुम घर जाओ, दोनों।"

कामिनियाँ ने कहा—"[illegible]

चन्दा ने कहा—"यह रुपये तो केवल इलाज के लिए हैं। पेट भी तो पालना है। दातुनें नहीं बेचेंगे तो खायेंगे कहाँ से ?"

नौशेरवाँ जी ने पूछा—"तुम दिन में कितना कमा लेते हो ?"

चन्दा ने कहा—"मैं दिन में चार आने कमाता हूँ, यह आठ आने कमाती है।"

नौशेरवाँ जी ने पूछा—"यह आठ आने क्यों कमाती है ?"

"औरत है, गाकर बेचती है, सभी खरीदते हैं।"

नौशेरवाँ जी हँसने लगा, चन्दा भी हँसने लगा, कामिनियाँ भी हँस कर कहने लगी—"चल हट।"

चन्दा बोला—"अब हँस रही हो मेरी बन्नो—यह सवेरे से चिन्ता-मग्न थी कि डाक्टर के पास कैसे इसके बाप को ले जाएँ। अब यहाँ दातुनें बनाते-बनाते भी हम यही सोच रहे थे। सेठ, तुम सचमुच देवता बनकर इस समय आ गए।"

कामिनियाँ ने पलक उठाकर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से नौशेरवाँ जी पारसी की ओर देखा—उसके नेत्रों में विस्मय था और कृतज्ञता की भावना।

नौशेरवाँ जी पारसी घबरा कर उठा और बोला—"अच्छा तो मैं चलता हूँ।"

नौशेरवाँ जी चला गया तो चन्दा ने कहा—"धनी लोगों में सहृदय और सज्जन पुरुष भी होते हैं।"

"हाँ, सभी धनवान् बुरे थोड़े ही होते हैं।" कामिनियाँ ने उत्तर दिया।

"हाँ, नहीं प्रायः तो ये लोग बड़े दुष्ट होते हैं, परन्तु कोई-कोई··· अब यह नौशेरवां जी तो बहुत अच्छा आदमी है।"

कामिनियाँ का बाप स्वस्थ हो गया, परन्तु चन्दा को उसकी चिकित्सा के लिए नौशेरवां जी से चालीस रुपये उधार लेने पड़े। चन्दा और कामिनियाँ ने और कामिनियाँ के बाप और चन्दा

सांस भारी हो जाती है, गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाना पड़ता है। वह देखती है कि घरों के द्वार पर सुन्दर स्वस्थ स्त्रियाँ साफ़-सुथरे वस्त्र पहने सुन्दर बालकों को दूध पिला रही हैं या चर्खा कात रही हैं या टोकरियों में सब्ज़ी रखे भोजन बनाने की तैयारी कर रही हैं और वह कहती जाती है—'दातुन ले लो जी, दातुन ले लो जी, और उसके कन्धे बोझल हो जाते हैं और नग्न पांवों में भी पीड़ा होने लगती है।'......

छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस......चन्दा सोचता है—'वह उनतीस वर्ष का है। उनतीस वर्षों में उसे कई उनतीस फ़ाके करने पड़े हैं। कई उनतीस सौ अपमान सहन करने पड़े हैं। गाड़ी में बिना टिकट चलने पर चन्दा को और उसकी सुन्दर पत्नी को अनेकों बार हवालात में भूखा रहना पड़ा है, पुलिस वालों की गालियां खाना पड़ी हैं। परन्तु उसके अन्तर में तो स्वाभिमान की भावना है, वही भावना जो अन्य मनुष्यों में होता है। क्या वह टिकट लेकर गाड़ी में चढ़ना नहीं चाहता? परन्तु उसके पास टिकट के लिए पैसे क्यों नहीं होते, क्यों नहीं होते, क्यों नहीं होते?"......

...तीस, इकत्तीस, बत्तीस, तेतीस, चौंतीस, पेंतीस, छत्तीस, संतीस अड़तीस......।

कामिनियां का बाप सोचता है—"जीवन भर वह गिन-गिनकर दातुनें काटता रहा और गिन-गिन कर एक-एक पैसा जोड़ता रहा और पचास वर्ष में उसके पास बीस रुपये से अधिक पूंजी न हो सकी और वह जीवन भर कभी रोगग्रस्त न हुआ और जब हुआ तो दस दिनों ही में पचास वर्ष की कमाई समाप्त हो गई। यह कैसा न्याय है, यह कैसा अन्धेर है, ऐसा क्यों होता है?"

उन्तालीस, चालीस।

धमक, जैसे हथोड़े की चोट पड़ती है, इस प्रकार अन्तिम रुपया धरती पर गिर कर बजा और कामिनियां ने ज़ोर से कहा—"नहीं, नहीं,

मेरा खून पियो जो ये रुपये उसे दे दो।" चन्दा ने रुपये कसकर पोटली में बाँध लिये और कहा—"कामिनियाँ इसमें तुम्हारा, मेरा, हम सब का खून है परन्तु फिर भी यह रुपये लौटाने होंगे।" कामनियाँ के बाप की रोगी आँखें क्रोध से जलने लगीं, उसने लाठी उठा ली। चन्दा के बाप ने अपना घूँसा तान लिया और वे दोनों चन्दा की ओर बढ़े। परन्तु चन्दा वहीं अपने स्थान पर खड़ा रहा। उसने अपनी भुजाएँ अपनी छाती पर लपेट लीं।

चन्दा ने कठोरता से कहा—"मैं रुपये अवश्य लौटाऊँगा। यदि इस समय कोई मेरे पास आया तो उसकी खैर नहीं।"

इतना कह कर चन्दा लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ घर से बाहर निकल गया।

रुपया लौटाने के पश्चात् थोड़े ही दिनों में कामिनियाँ और चन्दा की कटुता और क्लेश दूर हो गया और वे दोनों फिर एक दूसरे के प्रेम में गुथे हुए बड़ी लग्न और उत्साह से दातुनों का धन्धा करने लगे। नौशेरवां जी अब उन्हें प्रतिदिन मिलता और दस-पन्द्रह मिनट उनके पास बैठता, उनकी मनोरंजक बातों से जी खुश करता और कभी-कभी उन दोनों में झगड़ा हो जाता तो मध्यस्थ का काम करता और उनके झगड़े निबटाता और उसमें सन्धि कराने के पश्चात् उनकी प्रसन्नता में शामिल होता।

कभी-कभी वे लोग अपनी पोटली खोल चने खाने लगते तो वह भी उनके साथ चने खाता और बराबर का भाग लेता। कभी-कभी उनमें चने बांटने पर बड़ी छीना-झपटी होती थी और कामिनियाँ को कम चने मिलते तो उस समय नौशेरवां जी बड़ी उदारता से अपने चनों में से कुछ चने कामिनियां को दे देता और इस पर चन्दा कामिनियां का पक्ष लेने पर आरोप लगाता और फिर नौशेरवां जी कुछ चने चन्दा को भी दे देता और इस प्रकार यह हास्य विनोद चलता रहा। वे दोनों, चन्दा और कामिनियां, उसे ऐसे चाहने लगे जैसे कोई अपने बड़ों से प्यार